चौथी दुनिया

www.chauthiduniya.com

मूल्य 5 रुपये

हिंदी का पहला साप्ताहिक अख़बार

1986 से प्रकाशित | 19 जून- 25 जून 2017 | नई दिल्ली | हर शुक्रवार को प्रकाशित | Postal Regn. No. DL (ND)-11/6139/2015-17, RNI No. DELHIN/2009/30467

महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के साथ पूरे देश में निर्णायक करवट ले रहा किसान

किसानों के पास चारा क्या है!

- मंदसौर में प्रदर्शनकारी किसानों पर फायरिंग के बाद और उग्र हुआ आंदोलन
- यूपी में भी किसानों के सड़क पर उतरने की तैयारी, गांवों में हो रही हैं बैठकें
- स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशें लागू होने पर ही मानेंगे देश के किसान
- शिवराज सिंह ने क्यों भंग कर दिया था मध्य प्रदेश राज्य किसान आयोग?

दीनबंधु कबीर

किसानों के पास और कोई रास्ता भी नहीं बचा था. देश में आजादी के बाद से लेकर आज तक किसानों की सबसे अधिक उपेक्षा हुई और किसानों की सबसे अधिक मौतें हुईं. किसान चाहे आत्महत्या से मरा हो या पुलिस ने उसे गोली मारी हो. मध्य प्रदेश के मंदसौर में पुलिस की गोली से करीब आधा दर्जन किसानों के मारे जाने के बाद लोगों को सरकार की प्राथमिकता समझ में आई और 'जय जवान-जय किसान' के शाश्वत नारे की असलियत किसानों के खून के साथ बहती दिखाई पड़ी. किसानों को सत्ता ने बेवकूफ बनाया, किसानों को नेताओं ने बेवकूफ बनाया और किसानों को किसान-नेताओं ने बेवकूफ बनाया. उद्योपतियों ने अपने उत्पाद की कीमत अपनी मर्जी से तय करने का अधिकार ले लिया, लेकिन किसान आज तक अपने उत्पाद की कीमत खुद तय नहीं कर पाया. सरकार ने फसलों की न्यूनतम कीमत तय नहीं की और किसान अपने उत्पाद खेतों में ही छोड़ कर उसी खेत में फांसी लगा लेने पर विवश होते रहे. किसान आंदोलनों से जुड़े उत्तर प्रदेश के वरिष्ठ किसान नेता शिवाजी राय कहते हैं कि देश में हिंसा पर आमादा होने के बाद ही सरकारें ध्यान देती हैं. यह एक तरह से आखिरी अस्त्र हो चुका है. जाटों ने इसे आजमाया, सफल रहे. गूजरों ने आजमाया, सफल रहे. एक समय किसान नेता महेंद्र सिंह टिकैत भी जब-जब उग्र हुए तब-तब सरकार उनके आगे नतमस्तक हुई. राय ने कहा कि कश्मीर से लेकर पूर्वोत्तर और दक्षिण से लेकर उत्तर भारत तक जिस समुदाय ने हिंसा का रास्ता अपनाया, सरकारों ने उनके आगे घुटने टेके. सरकारों ने खुद ही जन-आंदोलनों के हिंसक बनने का रास्ता खोला है. उसी रास्ते पर मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र चला, अब उत्तर प्रदेश के किसान भी सड़क पर उग्र होकर उतरने का मन बना रहे हैं.

पुलिस फायरिंग में किसानों के मारे जाने के बाद भड़की हिंसा को सरकार और सरकार के एजेंट आपराधिक शक्ल देने के कुचक्र में लगे हैं. आगजनी और उपद्रव को दूसरी दिशा में मोड़ने की कोशिशें हो रही हैं. फिर साजिश हो रही है कि किसानों की मूलभूत मांगें सरकारी साजिशों में विलुप्त हो जाएं. इसके लिए किसानों के बीच अलग-अलग किस्म की राजनीति घुसेड़ने की कोशिशें तेज हो गई हैं. मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के आंदोलनरत किसान कहते हैं कि किसान जब सड़कों पर दूध बहाने लगे और अपनी फसलें नष्ट करने लगे तो समझना चाहिए कि अब इंतिहा हो चुकी है, क्योंकि किसानों के लिए अपनी फसल बर्बाद करना सबसे अधिक पीड़ादायक होता है. मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र दोनों राज्यों में भाजपा की सरकारें हैं. मध्य प्रदेश में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से सम्बद्ध भारतीय किसान संघ वहां के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान के साथ बैठक के बाद आंदोलन खत्म करने का ऐलान कर देता है तो आंदोलन में अगुआ भारतीय किसान यूनियन और राष्ट्रीय किसान मजदूर संघ संघर्ष जारी रखने की घोषणा करता है. किसानों के आंदोलन ने जब उग्र रूप धारण किया तब दोनों राज्यों के मुख्यमंत्रियों शिवराज सिंह चौहान और देवेंद्र फड़नवीस ने किसानों की उपज की वाजिब कीमत निर्धारित करने, कर्जा माफ करने व अन्य मांगों पर काम करने का धड़ाधड़ संदेश देना शुरू किया. इसके लिए दोनों मुख्यमंत्रियों ने ट्विटर और अन्य सोशल मीडिया माध्यमों का सहारा लिया. शिवराज ने ट्विटर पर कहा कि तीन-चार दिन के अंदर आठ रुपए किलो की दर से प्याज की खरीद शुरू हो जाएगी और महीने के अंत तक जारी रहेगी. यह भी कहा गया कि सरकार मूंग की दाल न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीदेगी. मुख्यमंत्री चौहान ने कहा कि न्यूनतम समर्थन मूल्य पर कृषि उपज खरीदने के लिए एक हजार करोड़ का मूल्य संतुलन फंड बनाया जाएगा. मंडी में किसानों को 50 प्रतिशत नकद भुगतान तत्काल होगा और बाकी का 50 प्रतिशत उनके बैंक खाते में जाएगा. मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान किसानों के कल्याण के लिए बड़ी-बड़ी बातें कहते रहे हैं. वे खुद को भी किसान ही कहते हैं. लेकिन वे यह नहीं कहते कि उन्होंने अपने राज्य में गठित किसान आयोग को भंग क्यों कर दिया! मध्यप्रदेश में 19 सितंबर 2006 को जब राज्य किसान आयोग का गठन किया गया था तब प्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ही थे और 31 दिसम्बर 2010 को किसान आयोग को भंग कर दिया गया, तब भी मुख्यमंत्री चौहान ही थे. तब चौहान ने तर्क दिया था कि आयोग केवल सिफारिशी संस्था है. ऐसा कह कर आयोग की सिफारिशें ताक पर रख दी गई थीं. शिवराज सरकार ने आयोग को संवैधानिक दर्जा देने के बजाय उसे भंग ही कर दिया. मध्य प्रदेश में किसान आयोग ने अपने चार वर्ष तीन माह के कार्यकाल में सात प्रतिवेदन राज्य सरकार को सौंपे थे. इनमें 811 सिफारिशें की गई थीं, लेकिन उनमें से अधिकांश कूड़ेदान में डाल दी गईं. महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री देवेंद्र फड़नवीस ने भी कहा कि 31 अक्टूबर से पहले किसानों का कर्ज माफ कर दिया जाएगा. महाराष्ट्र सरकार पांच एकड़ जमीन वाले करीब सवा करोड़ किसानों का कर्ज माफ करेगी, जिसके लिए महाराष्ट्र सरकार को 30 हजार करोड़ रुपए की जरूरत पड़ेगी. लेकिन इन सरकारी आश्वासनों के समानान्तर हम यह भी जानते चलें कि हफ्ते दस दिन के किसान आंदोलन में करोड़ों का नुकसान हो चुका है. महाराष्ट्र के लासलगांव स्थित प्याज की सबसे बड़ी मंडी में ही अकेले सौ करोड़ से अधिक के कारोबार को नुकसान पहुंचा. किसान आंदोलन की वजह से केवल महाराष्ट्र में अब तक पांच लाख लीटर दूध का नुकसान हो चुका है. बड़ी तादाद में प्याज और अन्य सब्जियां बरबाद (शेष पृष्ठ 2 पर)

केंद्र क्यों नहीं लागू करता स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशें!

देश में हरित क्रांति के पिता माने जाने वाले प्रो. एमएस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में 18 नवम्बर 2004 को एक आयोग का गठन किया गया था. तब केंद्र में कांग्रेस की सरकार थी. कृषि क्षेत्र में मौलिक परिवर्तन और सुधार की स्थितियों का अध्ययन करने के लिए गठित स्वामीनाथन आयोग (नेशनल कमीशन फॉर फार्मर्स) ने वर्ष 2004 से 2006 के बीच अपनी चार रिपोर्टें पेश कीं. आयोग ने किसानों की बढ़ती समस्याओं और उनकी आत्महत्याओं पर गहरी चिंता जताई थी. आयोग ने किसी फसल के उत्पाद पर आने वाले खर्च का डेढ़ गुना अधिक दाम किसानों को दिए जाने की सिफारिश की थी. आयोग ने यह भी कहा था कि अतिरिक्त और बेकार जमीनों को जरूरतमंदों के बीच बांटा जाए. आयोग की सिफारिशों में सबसे खास बात यह थी कि आयोग ने कहा था कि गैर-कृषि कार्य के लिए कारपोरेट सेक्टर को किसी भी कीमत पर कृषि भूमि और वन भूमि नहीं दी जाए. आयोग ने जंगल में आदिवासियों और चरवाहों को जाने और प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीयता के अधिकार पर भी जोर दिया था. कृषि भूमि की खरीद-फरोख्त के लिए भी आयोग ने कड़े नियम लागू करने की वकालत की थी. लेकिन अफसोस यह है कि कांग्रेस सरकार ने स्वामीनाथन कमीशन की रिपोर्ट को ठंडे बस्ते में डाल दिया और भाजपा सरकार ने भी उस फाइल की धूल झाड़ने की जहमत नहीं उठाई. ■

3 किसान जींस भी पहन सकते हैं आंदोलन भी कर सकते हैं

4 जारी है जल-जंगल-ज़मीन बचाने की जंग

5 क़ानूनी किताब का 'अंग्रेजी' पाठ

6 ऐसे स्वच्छ नहीं होगा भारत

किसानों के पास चारा क्या है!

पृष्ठ 1 का शेष

हुईं. मध्य प्रदेश में भी किसान आंदोलन में हजारों लीटर दूध बहा दिए गए और सब्जियां बरबाद कर दी गईं.

किसान आंदोलन की शुरुआत महाराष्ट्र के अहमदनगर स्थित पुणतांबा गांव से हुई. वहां के किसानों ने 22 मार्च को ही आंदोलन का रास्ता अख्तियार करने का फैसला कर लिया था. पुणतांबा की मंडी अहमदनगर और नासिक सीमा पर सबसे बड़ी मंडी है, जहां से आसपास के कई शहरों और कस्बों में दूध, फल और सब्जी की सप्लाई होती है. किसानों की कर्ज-माफी के मसले पर महाराष्ट्र और केंद्र सरकार की वादाखिलाफी के विरोध में शुरू हुए किसान आंदोलन ने पूरे देश में किसानों को जाग्रत कर दिया. महाराष्ट्र में कई साल से मानसून खराब होने के कारण पैदावार ठीक नहीं हुई और किसानों की स्थिति काफी खराब हो गई. इस साल जब फसल अच्छी हुई तो किसानों को उसकी उचित कीमत नहीं मिली. इस वजह से किसानों ने यह भी तय किया कि खरीफ के समय वे केवल अपनी जरूरत के मुताबिक ही फसल पैदा करेंगे. पुणतांबा के किसानों ने एक जून से किसान क्रांति मोर्चा के नाम से आंदोलन शुरू कर दिया. पश्चिम महाराष्ट्र के किसानों ने आंदोलन शुरू किया. नासिक और अहमदनगर आंदोलन का केंद्र बना और इसने बड़ी तेजी से पूरे महाराष्ट्र और पड़ोसी राज्य मध्य प्रदेश तक आंदोलन की आग फैला दी. मध्यप्रदेश में 2 जून से शुरू हुए आंदोलन ने इंदौर, धार, उज्जैन, नीमच, मंदसौर, रतलाम, खंडवा और खरगोन तक के किसानों को अपने साथ शामिल कर लिया. मध्य प्रदेश में तो करीब दो दशक बाद ऐसा आंदोलन हुआ. इससे पहले बैतूल जिले के मुलताई गांव में 1998 में किसानों ने उग्र आंदोलन किया था. 12 जनवरी 1998 को प्रदर्शन के दौरान 18 किसानों की मौत हुई थी. उस समय मध्य प्रदेश में कांग्रेस की सरकार थी.

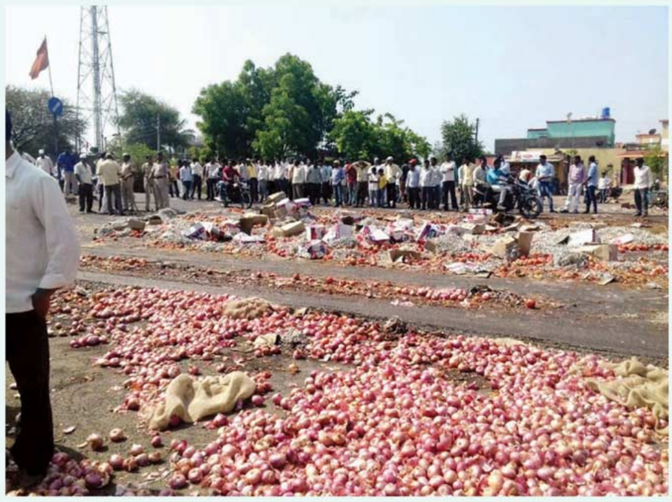

महाराष्ट्र के किसानों की मांग है कि उनका कर्ज माफ किया जाए और सरकार कृषि उपज का न्यूनतम समर्थन मूल्य उत्पादन लागत से 50 प्रतिशत अधिक तय करे. 60 साल और उससे अधिक उम्र के किसानों को पेंशन मिले. किसानों को बिना ब्याज के ऋण का प्रावधान हो और दूध की कीमत 50 रुपए लीटर की जाए. महाराष्ट्र के किसानों की यह भी मांग है कि सूक्ष्म सिंचाई उपकरणों के लिए किसानों को पूरी सब्सिडी मिले. दूसरी तरफ मध्य प्रदेश के किसान कर्ज माफी के अलावा दूध की कीमतों में बढ़ोत्तरी और किसानों पर दर्ज मामलों को अविलंब वापस लेने की मांग कर रहे हैं. महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के किसान आंदोलन की खासियत यह भी है कि वे स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशें लागू करने की मांग कर रहे हैं. स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट यह सिफारिश करती है कि फसल उगाने में किसानों की जितनी लागत लगती है उससे 50 प्रतिशत अधिक कीमत उसे मिलनी चाहिए. महाराष्ट्र के किसानों का आंदोलन पूरे देश के लिए चिंता का कारण इसलिए भी बना हुआ है कि देश में सबसे अधिक प्याज महाराष्ट्र में ही पैदा होता है. दूसरी तरफ महाराष्ट्र दूध का भी सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है. दूध उत्पादन और प्याज उत्पादन में मध्य प्रदेश का दूसरा स्थान है. मध्य प्रदेश में अधिकांश खेती बरसात पर निर्भर करती है. लगातार दो साल के सूखे ने किसानों को आर्थिक रूप से जर्जर बना दिया. किसानों ने खेती के लिए अधिक ब्याज पर कर्ज लिया, लेकिन फसल मरने की वजह से वे ऋण नहीं चुका पाए. इस वजह से मध्य प्रदेश में कई किसानों ने आत्महत्या कर ली. अरहर और सोयाबीन के मामले में महाराष्ट्र के किसानों को काफी नुकसान उठाना पड़ा. सब्जियों में तो क्या महाराष्ट्र, क्या मध्य प्रदेश और क्या उत्तर प्रदेश, सब जगह किसान बुरी तरह मारे गए. सब्जियां फेंकनी पड़ीं. प्याज टमाटर कौड़ियों के भाव बिका. मध्यप्रदेश में तो सैकड़ों किसानों ने अपने खेतों में प्याज की खड़ी फसल जुतवा दी. इंदौर में तो प्याज की कीमत तीन रुपये प्रति किलो से 50 पैसे प्रति किलो तक पहुंच गई. देश में प्याज उत्पादन में महाराष्ट्र के बाद मध्यप्रदेश का ही स्थान है. इंदौर, रतलाम, खांडवा, नीमच, धार और उज्जैन में बड़े पैमाने पर प्याज की खेती होती है.

यही हाल आलू का हुआ है. यूपी से लेकर मध्य प्रदेश और पंजाब तक किसानों ने आलू कौड़ियों के भाव बेचा. पंजाब में तो 70 आलू किसानों ने आत्महत्या कर ली. उत्तर प्रदेश में भी किसानों को अपना आलू सड़कों पर फेंक देना पड़ा. उत्तर प्रदेश का फर्रुखाबाद क्षेत्र आलू उत्पादन के लिए देशभर में अव्वल है. लेकिन आलू की फसल यहां के किसानों की मौत का सामान बन गई. मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने न्यूनतम समर्थन मूल्य पर आलू खरीदने की घोषणा की लेकिन यह घोषणा जमीनी यथार्थ नहीं बन पाई. योगी सरकार ने 478 रुपए प्रति क्विंटल की दर पर एक लाख मीट्रिक टन आलू खरीदने का ऐलान तो किया, लेकिन वह लक्ष्य-साधक नहीं साबित हुआ. देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जिस समय नोटबंदी लागू कर रहे थे, उस समय देश में बंपर आलू पैदा हो रहा था. लेकिन नोटबंदी में आलू किसान ऐसा बेमौत मरा कि उसे 50 पैसे किलो तक आलू बेचना पड़ा. यूपी और पंजाब के किसानों की एक जैसी दशा हुई. हालत यह है कि जिस तरह उत्तर प्रदेश के गन्ना किसानों ने गन्ने की खेती छोड़ दी, उसी तरह उत्तर प्रदेश के आलू बेल्ट के किसान आलू की खेती छोड़ देने का मन बना रहे हैं.

यही वजह है कि कृषि उपज की लागत से 50 फीसदी अधिक न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करने की मांग धीरे-धीरे पूरे देश में जोर पकड़ती जा रही है. केंद्र और राज्य की सरकारों को यह मानना ही पड़ेगा कि लागत और महंगाई के मद्देनजर किसानों को उनकी कृषि उपज का मिलने वाला भाव काफी कम है. सरकार को खेती को मुनाफे का धंधा बनाने के लिए हर कृषि उत्पाद का न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित करना ही पड़ेगा. न्यूनतम समर्थन मूल्य से मतलब उस कीमत से है जो सरकार किसी खाद्यान्न के बदले किसान को भुगतान की गारंटी देती है. सरकार ने गेहूं, धान और गन्ना समेत कई कृषि उपजों का न्यूनतम समर्थन मूल्य तय कर रखा है, लेकिन वह किसान की लागत की तुलना में काफी कम है, जिसके कारण किसानों को मजबूर होकर आत्महत्या करना पड़ रहा है. किसानों को अपनी फसल की लागत हासिल करना भी मुश्किल हो रहा है. कृषि विशेषज्ञ कहते हैं कि 1970 में गेहूं 76 रुपए क्विंटल था, वह 2015 में करीब 1450 रुपए क्विंटल हुआ और 2017 में 1650 रुपए प्रति क्विंटल हो गया, जबकि इस अवधि में सरकारी कर्मचारियों का मूल वेतन और डीए करीब दो सौ गुना बढ़ गया, केंद्रीय और राज्य कर्मचारियों के वेतन और भत्तों में अनाप-शनाप बढ़ोत्तरी हुई, लेकिन किसानों की आय थमी की थमी रह गई. उसे लागत की रकम भी नहीं मिल पाई. सरकारों ने किसानों की उपेक्षा करके घोर अपराध किया है. चपरासी का वेतन संतोषजनक से होकर सम्मानजनक स्थिति पर पहुंच गया, लेकिन किसानों को इस देश में भिखमंगा बना कर रख दिया गया. स्वामीनाथन आयोग भी कहता है कि 1925 में 10 ग्राम सोने का मूल्य 18 रुपए और एक क्विंटल गेहूं 16 रुपए का होता था. 1960 में 10 ग्राम सोना 111 रुपए और एक क्विंटल गेहूं 41 रुपए का था. मौजूदा समय में जब 10 ग्राम सोने का मूल्य 29000 रुपए है, तो एक क्विंटल गेहूं महज 1625 रुपए का है. 1965 में केंद्र सरकार के प्रथम श्रेणी अधिकारी के एक माह के वेतन से छह क्विंटल गेहूं खरीदा जा सकता था. आज उस केंद्रीय कर्मी के एक माह के वेतन से 30 क्विंटल गेहूं खरीदा जा सकता है. यह तुलनात्मक आंकड़ा साबित करता है कि सरकार किसानों के श्रम का सम्मान कितने अन्यायपूर्ण तरीके से करती चली आ रही है. सरकार कृषि उपज का जो समर्थन मूल्य घोषित करती है वह देश की लगभग 60 फीसदी से अधिक आबादी के सम्मान और समानता से जीने के मौलिक अधिकार का सीधा-सीधा उल्लंघन है.

बहरहाल, महाराष्ट्र के किसान आंदोलन को लेकर वहां की सियासत भी आपस में ही ठन गई है. भाजपा के साथ गठबंधन में शामिल शिव सेना किसानों के मुद्दे पर सरकार से अलग खड़ी है तो भाजपा सरकार के मंत्री भी किसान आंदोलन का खुला समर्थन कर रहे हैं. शिवसेना सांसद संजय राउत किसान आंदोलन के समर्थन में लगातार बयान जारी कर रहे हैं और किसानों की कर्ज-माफी के मसले पर फड़नवीस सरकार के हठ की आलोचना कर रहे हैं. शेतकारी संगठन के नेता और फड़नवीस सरकार में राज्य मंत्री सदाभाऊ खोत किसान आंदोलन में शरीक हैं. किसान आंदोलन को महाराष्ट्र के 15 से 20 किसान संगठनों का समर्थन प्राप्त है. भारतीय किसान यूनियन के मुख्य प्रवक्ता राकेश टिकैत ने भी कहा कि किसानों का आंदोलन देशभर में फैलेगा. अपनी उपज का उचित मूल्य पाने और कर्ज-माफी को लेकर महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के जो किसान सड़क पर उतरे हैं, उनके साथ पूरे देश का किसान है. किसानों का यह आंदोलन पूरे देश में फैलेगा. केंद्र और राज्य सरकारों की किसान विरोधी नीतियों का नतीजा है कि आज अन्न उत्पादकों को सड़क पर उतरना पड़ रहा है. अभी समय है कि सरकार किसानों की समस्याओं पर ध्यान दे जिससे किसानों को उनकी उपज का सही दाम मिल सके. टिकैत ने कहा कि उत्तर प्रदेश में भी किसानों की स्थिति बहुत दयनीय है इसको लेकर भी यहां के किसान आंदोलन करेंगे. समाजवादी पार्टी के मुख्य प्रवक्ता राजेंद्र चौधरी ने किसानों के आंदोलन को पार्टी का समर्थन जताते हुए कहा कि केंद्र की भाजपा सरकार को किसानों की जरा भी चिंता नहीं है और भाजपा शासित राज्यों में किसानों के साथ बर्बर व्यवहार किया जा रहा है. चौधरी ने मंदसौर में किसानों पर पुलिस फायरिंग की तीखे स्वर में निंदा की. सपा नेता ने कहा कि भाजपा की किसान विरोधी नीति के कारण तीन वर्ष में लाखों किसानों ने आत्महत्याएं कीं. उत्तर प्रदेश में हर महीने कर्ज से दबे 50 किसान फांसी पर लटक कर जान दे रहे हैं. राष्ट्रीय लोक दल के वरिष्ठ नेता अनिल दुबे ने भी कहा कि उत्तर प्रदेश के किसान सरकारी उपेक्षा से आजिज आ चुके हैं और जोरदार आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार हो रही है. गन्ना किसान पहले से अपने करोड़ों के बकाये को लेकर परेशान हैं, लेकिन सरकार झूठ पर झूठ परोस रही है. सब्जियां उपजाने वाले किसान अब कौड़ियों के मोल अपनी सब्जियां बेचने के लिए तैयार नहीं हैं. रालोद नेता ने कहा कि किसानों का आंदोलन पूरे देश को अपनी चपेट में ले लेगा.

उत्तर प्रदेश के करीब-करीब सारे किसान नेता कहते हैं कि छोटे और सीमांत किसानों का कर्जा माफ कर मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने किसानों को राहत तो दी, लेकिन इससे किसानों का व्यापक हित कतई नहीं सध रहा. हालांकि योगी सरकार के फैसले ने महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के किसानों को अपनी आवाज उठाने का मौका दे दिया, क्योंकि इन दोनों राज्यों के मुख्यमंत्री भी किसानों का कर्जा माफ करने का वादा काफी अर्से से कर रहे थे. ■

feedback@chauthiduniya.com

महाराष्ट्र के 40 लाख से अधिक किसान परिवार कर्ज में डूबे

देश में सबसे अधिक किसानों की आत्महत्या महाराष्ट्र में ही होती है. मराठवाड़ा और विदर्भ को किसानों की कब्रगाह कहा जाने लगा है. पिछले कई वर्षों से सूखे और सत्ता की उपेक्षा की मार झेल रहे महाराष्ट्र के किसानों की हालत दयनीय है. देश में किसानों की आत्महत्या के मामलों में महाराष्ट्र का प्रतिशत 45 है. पिछले दो दशक में महाराष्ट्र के 28 जिले सूखा, ओला और बारिश जैसी प्राकृतिक आपदा से प्रभावित रहे हैं. महाराष्ट्र के किसान सबसे अधिक केला, कपास, संतरा, नासपाती, सोयाबीन और प्याज जैसी नगदी फसलें उगाते हैं, जिसमें लागत सबसे अधिक आती है. इसकी वक्त पर कीमत नहीं मिली तो उपज बरबाद हो जाती है. केंद्रीय कृषि मंत्रालय का आधिकारिक आंकड़ा है कि महाराष्ट्र के 40 लाख 67 हजार 200 किसान परिवार कर्ज में डूबे हैं. पिछले दो दशक में सबसे ज्यादा 64 हजार किसानों ने महाराष्ट्र में आत्महत्या की. वैसे, देशभर में किसानों की हालत चिंताजनक है. ■

एक किसान की आवाज़...

जो किसान खेत में टिटहरी के अण्डे नजर आने पर उतनी जगह की जोत छोड़ देता है, वो यात्रियों से भरी बस के कांच कैसे फोड़ देता है? जो किसान खड़ी फसल में चिड़िया के अंडे/चूजे देख उतनी फसल नहीं काटता है, वो किसी की सम्पत्ति कैसे लूट सकता है? जो किसान पिंडाड़े में लगी आग में कूदकर बिल्ली के बच्चे बचा लेता है, वो किसी के घर में आग कैसे लगा देता है? जो किसान दूध की एक बूंद भी जमीन पर गिर जाने से उसे पोंछकर माथे पर लगा लेता है, वो उस अमृत को सड़कों पर कैसे बहा देता है? जो किसान गाड़ी का हॉर्न बजने पर सड़क छोड़ खड़ा हो जाता है, वो कैसे किसी का रास्ता रोक सकता है? जो किसान चींटी को अंडा ले जाते और चिड़िया को धूल नहाते देख कर बता सकता है कि कब पानी आएगा, वो कैसे किसी के बहकावे में आएगा? ये दुखद घड़ी क्यों आई? कुछ तो चूक हुई है. नदी से संवाद करने वाले, किसानों से संवाद करना भूल गए. जो किसान अपनी फसल की रखवाली के लिए खुले आसमान के नीचे, आंधी-तूफान, हिंसक जानवर से नहीं डरता, वो बन्दूक की गोली से नहीं डरेगा. किसान तो बस मीठी बोली से ही मानेगा. एक बार उसके अन्दर का दर्द अच्छे से जानिए, वो अन्नदाता है, उसे केवल मतदाता मत मानिए.

राष्ट्रीय किसान आयोग के गठन पर सियासत क्यों!

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति जनजाति आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की तर्ज पर केंद्र सरकार राष्ट्रीय किसान आयोग का गठन क्यों नहीं करती? यह सवाल संसद से सड़क तक लगातार उठते रहे हैं, लेकिन केंद्र सरकार न इसका जवाब देती है और न इसके गठन के लिए कोई पहल करती है. जदयू के वरिष्ठ नेता केसी त्यागी राज्यसभा में लगातार यह मांग करते रहे हैं कि राष्ट्रीय किसान आयोग का गठन हो, जिसे संवैधानिक अधिकार मिले और जो किसानों के कल्याण और उनके संरक्षण के लिए ठोस काम कर सके. विडंबना यह है कि वर्ष 2004 में प्रो. एमएस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में जो किसान आयोग बना, वह भी निष्क्रिय कर दिया गया और उसकी सिफारिशें भी लागू नहीं की गईं. ■

चौथी दुनिया
हिंदी का पहला साप्ताहिक अख़बार

वर्ष 09 अंक 16
19 जून- 25 जून 2017
RNI-DELHIN/2009/30467

संपादक
संतोष भारतीय

एडिटर (इंवेस्टिगेशन)
प्रभात रंजन दीन

सहायक संपादक
सरोज कुमार सिंह (बिहार-झारखंड)
सरयू भवन, वेस्ट बोरिंग केनाल रोड,
हरीलाल स्वीट्स के निकट, पटना-800001
फोन: 0612 3211869, 09431421901

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63 नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के- 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001
कैंप कार्यालय एफ-2, सेक्टर -11, नोएडा, गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश-201301

फोन न.

संपादकीय	0120-6451999
	6450888
विज्ञापन व प्रसार	022-65500786
	+91-8451050786
	+91-9266627379
फैक्स न.	0120-2544378

पृष्ठ-16++ (बिहार-झारखंड, उत्तर प्रदेश-उत्तराखंड)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुन: प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

किसान जींस भी पहन सकते हैं आंदोलन भी कर सकते हैं

किसान मरणासन्न : कृषि मंत्री का योगासन

आखिर वे कौन लोग हैं, जिन्हें किसान के बाइक पर चलने या जींस पहनने से आपत्ति है. जाहिर है, ऐसी मानसिकता के लोग ये कभी नहीं चाहेंगे कि किसान अपने हक के लिए लड़ें, आंदोलन करें. लेकिन पहली बार किसानों ने ये साबित कर दिया है कि किसान जींस भी पहन सकता है, खेती भी कर सकता है और जरूरत पड़ने पर आंदोलन भी कर सकता है. अब ये आंदोलन सफल हो या असफल, लेकिन ये साबित हो गया है कि किसान इस देश में एक संगठित ताकत है, किसान इस लोकतंत्र की जिन्दा कौम है.

शशि शेखर
feedback@chauthiduniya.com

मध्य प्रदेश: सरकार का किसान संघ बनाम किसान का किसान संघ

मध्य प्रदेश के किसान आंदोलन से जुड़ा सबसे बड़ा सवाल है कि ये आंदोलन किस मजदूर संगठन का है और ऐसी क्या आफत आ गई थी कि पुलिस को गोली चलानी पड़ी, जिसकी वजह से आधा दर्जन से ज्यादा किसानों की मौत हो गई. पहले सवाल का जवाब ये है कि दरअसल, ये भारतीय किसान संघ (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की एक शाखा और भाजपा से नजदीकी रखने वाला एक किसान संगठन) ही था, जिसे गुपचुप तरीके से सरकार ने बुलाकर वार्ता कर ली. लेकिन जमीनी स्तर पर जिस संगठन ने इस आंदोलन को शुरू किया था, उसे खबर लिखे जाने तक सरकार की तरफ से एक फोन कॉल तक नहीं गया. दरअसल, किसानों के साथ भारतीय किसान संघ ने जो धोखेबाजी की, उसी से आहत हो कर राष्ट्रीय किसान मजदूर संगठन से जुड़े किसान उग्र होते चले गए. शिव कुमार शर्मा उर्फ कक्का जी, राष्ट्रीय किसान मजदूर संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं. शिव कुमार शर्मा मध्य प्रदेश के पुराने जमीनी किसान नेता हैं. पुलिस द्वारा किसानों पर गोली चलाने वाली घटना के बारे में 'चौथी दुनिया' से बात करते हुए वे यहां तक कह गए कि शिवराज से झूठा सीएम कोई नहीं होगा. 8 किसानों की मौत हो चुकी है. आंदोलन बेकाबू है. इसकी वजह शिवराज सिंह चौहान ही हैं. उनके इस आरोप का आधार क्या है, ये पूछे जाने पर वे बताते हैं कि ये आंदोलन राष्ट्रीय किसान मजदूर संघ ने 1 जून को शुरू किया था. भारतीय किसान संघ की यहां कोई हैसियत नहीं है. वे हमारे आंदोलन के खिलाफ थे. 4 दिन बाद अचानक संघ के कहने पर वे हमारे समर्थन में आए और उज्जैन में जाकर सीएम के साथ समझौता कर लिया. उसके बाद ट्वीट कर उन्होंने आंदोलन समाप्ति की घोषणा कर दी. शिवकुमार शर्मा के मुताबिक, भारतीय किसान संघ की इस हरकत से स्थानीय किसान उग्र हो गए और शिवराज सिंह चौहान के पुतले जलने लगे. किसान आंदोलन के दौरान पुलिस को गोलीबारी क्यों करनी पड़ी, इस पर वे कहते हैं कि सरकार की तरफ से मंदसौर में कुछ आसामाजिक तत्वों को भेज कर गाड़ियों में आग लगवाई गई और फायरिंग की स्थिति बनाई गई. वे कहते हैं कि इस सरकार का ये पुराना ट्रेंड है. उनके मुताबिक इस फायरिंग में 8 किसान शहीद हो गए और इसी की प्रतिक्रिया में भीड़ बेकाबू हो गई. वे ये भी सवाल उठाते हैं कि आज तक हमलोगों को वार्ता के लिए क्यों नहीं बुलाया गया है.

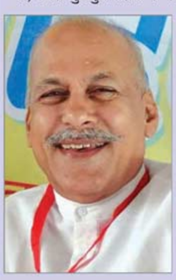

बहरहाल, सरकार की तरफ से मृत किसानों के लिए एक करोड़ रुपए के मुआवजे की घोषणा की गई है. जाहिर है, 2018 में चुनाव है. इस आंदोलन से भाजपा की काफी किरकिरी हुई है और इसके प्रतिकूल प्रभाव से ही निपटने के लिए सरकार ने मुआवजे की रकम इतनी ज्यादा बढाई है. शिव कुमार शर्मा ने 'चौथी दुनिया' को बताया कि ये आंदोलन कम से कम 10 जून तक चलेगा. 53 हजार गांवों में शिवराज सिंह के पुतले जलाए जाएंगे. आंदोलन की मुख्य वजह और मुख्य मांगों के बारे में वे बताते हैं कि मुख्य रूप से हमारी दो मांगें हैं. पहली ये कि किसानों को स्वामीनाथ आयोग की सिफारिश के अनुसार एमएसपी पर 50 फीसदी अधिक मूल्य मिले और दूसरी कि हमें ऋणमुक्त किया जाए. वे कहते हैं कि हरियाणा, तेलंगाना और आन्ध्र प्रदेश में भी हमारा आंदोलन शुरू होने वाला है और अब जल्द ही किसान आंदोलन एक राष्ट्रव्यापी शक्ल अख्तियार करने जा रहा है.

इधर, मंदसौर में किसानों पर पुलिस गोलीबारी के खिलाफ मध्य प्रदेश के अन्य शहरों समेत राजस्थान में भी विरोध की आग फैल गई. एमपी के सिधी जिले में टोको-रोको-ठोको क्रांतिकारी मोर्चा ने मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान का पुतला दहन किया है. टोको-रोको-ठोको क्रांतिकारी मोर्चा के संयोजक उमेश तिवारी 'चौथी दुनिया' से बात करते हुए कहते हैं कि खुद को किसानों का बेटा कहने वाले शिवराज सिंह ने किसानों से संवाद तक करना जरूरी नहीं समझा और उल्टे किसानों की हत्या करवा दी. उनका यह कृत्य संवेदनहीनता की पराकाष्ठा है. पुतला दहन के बाद सीधी कलेक्टर के माध्यम से मध्य प्रदेश के राज्यपाल के नाम ज्ञापन पत्र भी सौंपा गया.

महाराष्ट्र: एक धड़े की हड़ताल ख़त्म, एक की जारी

महाराष्ट्र में भी किसान आंदोलन जारी है. ये अलग बात है कि अब इसमें विभिन्न राजनीतिक दल भी शामिल हो गए हैं और इस आंदोलन के जरिए राजनीतिक लड़ाई भी लड़ने की कोशिश की जा रही है. लेकिन महाराष्ट्र के किसानों ने जिस तरीके से अपना विरोध प्रदर्शन किया और कर रहे हैं, उससे पता चलता है कि वाकई किसानों की हालत बहुत खराब है. महाराष्ट्र किसान मंच के संयोजक और किसान क्रांति के नेता धनंजय धोर्दे पाटिल 'चौथी दुनिया' से बात करते हुए कहते हैं कि महाराष्ट्र में 2013 से लगातार सूखा पड रहा था. पिछले साल बेहतर बारिश हुई, तो पैदावार बढ़ी. अंगूर, प्याज, तुअर दाल, चना की फसल अच्छी हुई, लेकिन उसका दाम किसानों को नहीं मिला. पिछले साल प्याज 50 पैसे प्रति किलो बिका. इस साल भी यही हुआ. प्याज उगाने का खर्च प्रति किलो 8 रुपए आता है लेकिन किसानों को मंडी में एक रुपए का दाम मिलता है. इससे किसान परेशान थे. पाटिल बताते हैं कि 17 मार्च 2017 को महाराष्ट्र में डॉक्टर हड़ताल पर गए थे. मैं और मेरे कुछ साथियों ने सोचा कि किसान भी हड़ताल क्यों नहीं कर सकते. फिर हमारे लोग पास के गांव पुणतांबा और शिरडी से 15 किलोमीटर दूर तक गए और वहां के लोकल लीडर्स से मिले. 3 अप्रैल को पुणतांबा ग्राम सभा ने प्रस्ताव पारित किया कि अगर किसान का कर्ज माफ नहीं किया जाता है, स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशें लागू नहीं होती हैं और दूध का दाम 50 रुपए प्रति लीटर नहीं दिया जाता है, तो पूरे महाराष्ट्र के किसान 1 जून से हड़ताल पर जाएंगे. इसके बाद, इन लोगों ने महाराष्ट्र के सैकड़ों गांवों के किसानों से अपील की कि वे भी अपने यहां की ग्राम सभा से ऐसा ही प्रस्ताव पारित करवाएं और 1 जून के हड़ताल की सूचना सरकार को दे दें. 1 मई को लगभग 3000 ग्राम पंचायतों ने सरकार को ग्राम सभा का प्रस्ताव भेज दिया. इस तरह, एक गैर राजनीतिक संगठन किसान क्रांति के नाम से लोग एक जगह जमा हुए. किसान क्रांति के नाम से कार्यकर्ता काम करने लगे. 30 मई को सीएम के साथ किसान क्रांति के कुछ नेताओं की बातचीत हुई, जिसका कोई नतीजा नहीं निकला.

1 जून से पूरे महाराष्ट्र में किसान हड़ताल पर चले गए. 2 जून की रात को सीएम ऑफिस की तरफ से किसान क्रांति के कुछ नेताओं के लिए बुलावा आया. 12 बजे रात को मीटिंग हुई. सीएम ने कहा कि 5 एकड़ तक जमीन वाले किसानों का कर्जा माफ किया जाएगा और दूध के दाम 20 जून तक बढ़ाए जाएंगे. इसके बाद किसान क्रांति के एक धड़े ने अपनी तरफ से हड़ताल वापस लेने का ऐलान किया. उनका ये तर्क था कि हड़ताला ज्यादा लंबा खींचने से कानून-व्यवस्था बिगड़ने का डर है. साथ ही किसान आर्थिक तौर पर ज्यादा लंबा हड़ताल बर्दाश्त नहीं कर सकते. लेकिन महाराष्ट्र के विपक्षी दलों समेत सत्ता में शामिल शिव सेना ने अपनी तरफ से हड़ताल जारी रखने का फैसला किया और इसमें किसान क्रांति का एक धड़ा भी शामिल हो गया. इनका कहना था कि सिर्फ 5 एकड़ ही क्यों, सभी किसानों का कर्ज माफ हो. 5 जून को महाराष्ट्र पूरी तरह से बंद रहा और आगे भी किसान क्रांति समेत विपक्ष की तरफ से रेल रोकने की तैयारी की जा रही है.

किसान आंदोलन और समाचार चैनल

10 जून की सुबह मध्य प्रदेश के सिहोर और भोपाल में किसान प्रदर्शन कर रहे थे. ये किसान मंदसौर गोलीबारी की घटना में मारे गए किसानों के विरोध में प्रदर्शन कर रहे थे. इसके अलावा राजस्थान और महाराष्ट्र में किसानों का आंदोलन चल रहा था. इस गर्मी में किसान सड़क पर थे, पुलिस की लाठियां खा रहे थे. इधर दिल्ली के वातानुकुलित दफ्तर में बैठे टीवी चैनलों के पत्रकार नरेंद्र मोदी की विदेश यात्रा का प्रसारण कर रहे थे. जी न्यूज, आज तक, न्यूज-18 इंडिया समेत ज्यादातर चैनलों को सिहोर और भोपाल में जारी किसान आंदोलन को दिखाने की शायद फुर्सत नहीं थी, या उन्होंने इसकी जरूरत नहीं समझी. एबीपी और एनडीटीवी ही मात्र दो ऐसे चैनल थे, जो 10 जून की सुबह वाले प्रदर्शन का प्रसारण कर रहे थे. इसके अलावा दिल्ली का राष्ट्रीय मीडिया इस किसान आंदोलन को बदनाम करने के लिए बार-बार ये कह रहा है कि ये किसान नहीं, उपद्रवी हैं. जाहिर है, ऐसा करके मीडिया सत्ताधारी दल के एजेंडे को आगे बढ़ा रहा है.■

बात चाहे केंद्र की हो, महाराष्ट्र की, मध्य प्रदेश की या उत्तर प्रदेश की, इन सभी जगहों पर दो बातें समान हैं. पहली ये कि इन सभी जगहों पर भाजपा की सरकार है और दूसरी ये कि सभी जगह किसान कर्ज को लेकर परेशान हैं. किसान चुनावी वादों के पूरा होने के इंतजार में हैं. उत्तर प्रदेश में योगी सरकार ने कर्ज माफ़ी की घोषणा तो कर दी, लेकिन अभी तक उसको अमल में नहीं लाया जा सका है.■

-विनोद सिंह
राष्ट्रीय अध्यक्ष, किसान मंच

इस आंदोलन पर भी रायता बिखेर देंगे नेता

जब भी कोई आंदोलन गरमाता है और निर्णायक दौर में पहुंचता है, तभी नेता उसमें कूद पड़ते हैं और उस पर सियासत का रायता फैला देते हैं. आंदोलन का राजनीतिकरण हो जाने के कारण सरकारें फिर राजनीतिक रुख अख्तियार कर लेती हैं और आंदोलन बिखर कर रह जाता है. इसे नेताओं की साजिश भी मान सकते हैं कि वे किसी भी जन-आंदोलन को इतना ताकतवर नहीं बनने देते कि वो भविष्य में राजनीतिक विकल्प के बतौर खड़ा हो सके. जेपी आंदोलन को छोड़ कर देश के किसी भी आंदोलन को देखें, तो नेता का पदार्पण तभी होता है जब आंदोलन परवान चढ़ने लगता है. जेपी आंदोलन भी जेपी और छात्रों-युवकों के बल पर शुरू हुआ और बाद में उसमें तमाम नेता टपक पड़े. आम लोगों के मन में ये सवाल बार-बार उठता रहा है कि आंदोलन की शुरुआत में नेता कहां रहते हैं? या नेता खुद कोई व्यापक जन-आंदोलन खड़ा क्यों नहीं कर पाते? या नेता आंदोलन को डुबाने क्यों चले आते हैं? नेता आंदोलन खड़ा होने के बाद ही उसमें अपनी नाक क्यों घुसेड़ देते हैं? लोगों ने अपने कटु अनुभवों से इन सवालों का जवाब जाना है. महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में किसान आंदोलन गरमाया, तो नेता भी गरमाने लगे. उसके पहले नेताओं को उन्हीं किसानों की कोई परवाह नहीं थी. कांग्रेस के नेता राहुल गांधी हों या शिव सेना के नेता संजय राउत या जदयू नेता शरद यादव या आप नेता अरविंद केजरीवाल या कोई अन्य, ये सारे नेता तब कहां थे, जब किसान यंत्रणा में अपनी जान दे रहे थे! जब किसान अपनी फसलें कौड़ियों के मोल बेच रहे थे या आजिज आकर अपनी उपज सड़कों पर फेंक रहे थे, तब ये नेता कहां थे! नेता अगर किसानों के हितों को लेकर इतने ही संजीदा होते, तो क्या किसान लाखों की संख्या में फांसी पर लटकते! क्या किसान अपनी ही फसल की लागत भी नहीं निकाल पाते और उद्योगपति मालामाल होते रहते! विडंबना ये है कि महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में किसान आंदोलन के निर्णायक दौर में पहुंचने के ठीक पहले सारे नेता कूद पड़े हैं. अब कांग्रेस अपने तरीके से राजनीति करेगी और आम आदमी पार्टी अपने तरीके से, उसी में जदयू भी अपनी सियासत खोंसेगी और शिव सेना अपनी. नतीजतन पूरा आंदोलन राजनीति के बहुकोण में फंस जाएगा और केंद्र और दोनों प्रदेशों की भाजपा सरकार को भी राजनीति करने का मौका मिल जाएगा. इस तरह एक और जन-आंदोलन बेनतीजा बिखर कर रह जाएगा. इसके संकेत अभी से मिलने लगे हैं.■

पॉस्को की वापसी की घोषणा के बाद भी

जारी है जल-जंगल-ज़मीन बचाने की जंग

इस पूरे मामले से समझा जा सकता है कि विकास की सुंदर तस्वीर विदेशी पैसे के गलत निवेश से किस प्रकार बदरंग हो सकती है. 52 हजार करोड़ का एक प्रोजेक्ट किस प्रकार से विकास की जगह विनाश का कारण बन गया, ये इसका कोई भुक्तभोगी ही समझ सकता है. अब समय है ये समझने का कि विकास के नाम पर किया गया कॉर्पोरेट इनवेस्टमेंट किस प्रकार से लोगों को विनाश के केंद्र में ले जाकर खड़ा कर देता है.

विभूतिपति

ये 20 जून 2005 की बात है, पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के कार्यालय और ओड़ीशा के मुख्यमंत्री नवीन पटनायक के कार्यालय समेत राज्य सचिवालय के विभिन्न विभागों में गहमागहमी थी. कारण था, पॉस्को का 52 हजार करोड़ रुपए का निवेश. दक्षिण कोरिया की ये दिग्गज कंपनी ओड़ीशा के जगतसिंहपुर जिले में 52 हजार करोड़ के निवेश से एक इस्पात कारखाना की स्थापना करने वाली थी. इसके लिए प्रस्तावित जमीन के प्रभाव क्षेत्र में गोविंदपुर, ढिंकिया, नौगान, गड़कुजांग और पटनागढ़ गांव आने वाले थे. मनमोहन सिंह की यूपीए सरकार 52000 करोड़ रुपए के इस विदेशी निवेश से गौरवांवित महसूस कर रही थी. ओड़ीशा की नवीन पटनायक सरकार भी इस विशाल निवेश में अपने लोगों के लिए रोजगार के अवसर देखी रही थी. देश और ओड़ीशा की प्रगति के लिए पॉस्को को एक सुनहरे सपने के रूप में देखा जा रहा था और इसकी स्थापना को ग्रामीणों की समृद्धि के रूप में पेश किया जा रहा था. एक तरह से दोनों ही सरकारें खुद ही इस उपलब्धि का जश्न मना रही थीं. हालांकि गोविंदपुर, नुगन, ढिंकिया, गदकुजंगा और पटनागढ़ के लोग ये समझ नहीं पा रहे थे कि 52 हजार करोड़ रुपए का ये विदेशी निवेश उनके क्षेत्र को किस प्रकार विकसित करेगा. गांव वालों के मन में कई सवाल थे. वे सोच रहे थे कि जब सरकार उनके जल–जंगल–जमीन को पॉस्को को सौंप देगी, वे अपनी जमीनों से बेदखल कर दिए जाएंगे और उनकी आजीविका के स्रोत मछली, पान और फसलें नष्ट हो जाएंगी, तो फिर इससे किस प्रकार उनका विकास होगा, वे कैसे समृद्ध होंगे, किस तरह से प्रगति करेंगे.

बसाने के सपने के साथ उजाड़ गया पॉस्को

पॉस्को के खिलाफ लड़ाई में बुजुर्ग नारायण मंडल ने अपने दो बेटों दुला (37) और बुला (33) को खो दिया. बुला अपने पीछे अपनी विधवा और 18 महीने की एक बेटी को छोड़ गया. इसी संघर्ष में पांच बेटियों के पिता 49 वर्षीय लक्ष्मण परमणिक लकवाग्रस्त हो गए. 2 मार्च को एंटी पॉस्को विद्रोह में 52 वर्षीय नारायण शाही और मानस जेना की मृत्यु हो गई. मरते समय मानस अपने दो महीने के बेटे को भी नहीं देख पाए थे. 57 वर्षीय गुरेई दास को भी उस समय भयंकर पुलिस प्रताड़ना का शिकार होना पड़ा था. उस अपराध का भागी कौन बनेगा, जो नारायण मंडल, उनके दोनों मृत बेटों और उनकी विधवा पत्नी के साथ हुआ. मानस और दुर्योधन के परिवार वालों, उनकी विधवा, अपंग लक्ष्मण परमणिक और गुरेई दास को मुआवजा कौन देगा. क्या सरकार आश्रय विहिन हो चुके पोस्टमास्टर बाबाजी सामंतरे को उनकी प्रतिष्ठा वापस लौटा सकती है. इलाके में ऐसे ही सवाल तैर रहे हैं. अब 12 साल बाद लोग इस क्षेत्र के विकास को लेकर पॉस्को और सरकार द्वारा किए गए के थोथे वादों के खिलाफ एकजुट होने लगे हैं. ग्रामीणों का कहना है कि पॉस्को के रास्ते विदेशी निवेश लाने की कोशिश में सरकार ने यहां के मेहनती लोगों को खोखले सपने दिखाए और फिर यहां आतंक और संहार का वातावरण तैयार कर दिया. सैकड़ों लोगों को झूठे मुकदमों में फंसाया गया और आम लोगों की आवाज दबाई गई.

बुजुर्ग नारायण मंडल

एंटी पॉस्को मूवमेंट के नेता अभय साहू और मनोरमा खतुआ का कहना है कि जल्द से जल्द लोगों को उनकी जमीनें लौटाई जाए और सैकड़ों ग्रामीणों पर किए गए फर्जी मुकदमों को बिना किसी शर्त वापस लिया जाय. जिन लोगों की जमीनें अनुपयोगी रह गईं उन्हें और उन नौजवानों को सरकार हर्जाना दे, जो दूसरे शहरों में जाकर नौकरी करने को विवश हुए. साइक्लोन प्रभावी इस क्षेत्र में प्रशासन ने व्यापक स्तर पर पेड़ों की कटाई की है, सरकार को चाहिए कि वो बिना देर किए जल्द से जल्द वृक्षारोपण का काम शुरू करे. अगर ऐसा नहीं किया जाता है, तो सरकार को एक और बड़े आंदोलन के लिए तैयार रहना होगा. पॉस्को के खिलाफ लड़ाई लड़ रहे कई लोगों पर किए गए केस आज 12 साल बाद भी पेंडिंग हैं. इस मामले में मनोरमा खतुआ पर 39, संजू मंत्री पर 18, दलित महिला शांति दास पर 24, अहल्या बेहेरा पर 8, मंजू सामंतरे पर 11, अजय दास पर 54, सूरा दास पर 18 और बाबाजी सामंतरे पर 30 फर्जी मुकदमे दायर किए गए थे. आज इनकी व्यथा सुनने वाला कोई नहीं है.

पूर्व पोस्टमास्टर बाबाजी सामंतरे अपनी जमीन और भावी पीढ़ी के अधिकारों की रक्षा के लिए एंटी पॉस्को मूवमेंट को सपोर्ट करते रहे हैं. इसी कारण उन्हें एक झूठे मुकदमे में फंसाकर उनकी सेवा बर्खास्त कर दी गई. सरकार की तरफ से इस उत्पीड़न का बाबाजी को बहुत आघात लगा. आज 12 साल बाद उन्हें 30 में से 10 मुकदमों में बेल मिल चुका है. इन मुकदमों में बेल लेना बहुत ही खर्चीला है. बाबाजी कहते हैं कि मेरे लिए अब इस उम्र में एक कोर्ट से दूसरे कोर्ट का चक्कर लगाना बहुत ही मुश्किल है. स्थानीय पुलिस अब कुछ सहयोग कर रही है. अब जजों को भी समझ आ गया है कि मुझे किस तरह से झूठे मुकदमों में फंसाया गया. न्यायालय एक दिन अवश्य ही मुझे निर्दोष साबित करेगी. उसके बाद मैं अपने डिपार्टमेंट और राज्य सरकार पर केस करूंगा, जिन्होंने साजिश के तहत मुझे फंसाया. बाबाजी कहते हैं, हम अपनी जमीनें लैंड बैंक में नहीं रहने देंगे, सरकार को हमें हमारी जमीनें वापस करनी पड़ेगी. ये लैंड बैंक किसके लिए बनाया जा रहा है?

अपंग लक्ष्मण परमणिक

वे भी बर्बाद हो गए जिन्होंने पॉस्को पर भरोसा किया

अब इसे लेकर भी सवाल उठ रहे हैं कि पॉस्को द्वारा प्रोजेक्ट वापस लिए जाने के बाद किस तरह से उन 52 परिवारों के साथ विश्वासघात किया गया और उन्हें विस्थापित छोड़ दिया गया, जिन्होंने सरकार और पॉस्को पर भरोसा किया था. 12 साल बाद अब पॉस्को तो वापस जा चुका है, लेकिन उन 52 परिवारों को कौन हर्जाना देगा, जो आज जिंदा लाश बनकर रह गए हैं. आज उनका दुख सुनने वाला कोई नहीं है. अपनी वासभूमि से बेदखल होने के बाद अब वे शरणार्थी जैसी जिंदगी गुजार रहे हैं. अब उनमें इतनी ताकत नहीं बची है कि वे इस विकास के बदरंग चेहरे का सामना कर सकें. प्रो–पॉस्को एक्टीविस्ट रहे तमिल प्रधान कहते हैं कि अब हम राज्य सरकार और केंद्र सरकार की साजिश के बारे में जान चुके हैं. हमें उन दोमुंहे नेताओं की सच्चाई पता चल चुकी है, जिन्होंने ग्रामीणों को बर्बादी की तरफ ढकेला. राज्य सरकार लैंड बैंक की प्रक्रिया को खत्म करे और ग्रामिणों की उनकी जमीनें लौटाए. सरकार को निर्दोष लोगों और उनकी आजीविका से खेलना बंद करना होगा. चंदन मोहंती उस समय उन 52 परिवारों में सबसे आगे थे, जिन्होंने पॉस्को प्रोजेक्ट का समर्थन किया था और प्रोजेक्ट के लिए अपनी जमीनें प्रशासन को सौंप दी थी. लेकिन वे ही चंदन मोहंती अब 12 साल बाद कहते हैं कि जिस सरकार ने हमारा संरक्षक बनने का दावा किया था, वो हमारी विनाशक बन गई. सरकार पर भरोसा कर के सुखद भविष्य के लिए हमने अपना सुख–चैन दफन कर दिया, लेकिन आज शरणार्थी की जिंदगी जी रहे हैं. एक तरह से हमने अपना वर्तमान और भविष्य सरकार के हाथों गिरवी रख दिया है और शरणार्थी शिविरों में जिंदा लाश बनकर रह रहे हैं. मोहंती कहते हैं कि जिलाधिकारी सत्यव्रत मल्लिक ने जब हमें शरणार्थी शिविर से बाहर निकलने का आदेश दिया, तब हमें पता चला कि विकास का असली मतलब क्या होता है. अब बिना देर किए सरकार को लैंड बैंक बनाने का विचार त्याग कर ग्रामीणों को उनकी जमीनें वापस करनी चाहिए. हमें सरकार के विकास और लैंड बैंक की जरूरत नहीं है.

ओड़ीशा

गुरेई दास

एक और आंदोलन की आहट

पॉस्को को बंद करने की आधिकारिक घोषणा के बाद भी स्थानीय आबादी का संघर्ष और विद्रोह खत्म होने का नाम नहीं ले रहा है. इसका कारण है, पॉस्को के लिए अधिग्रहित की गई जमीनों का लैंड बैंक बनाने के संबंध में मुख्यमंत्री की टिप्पणी. मुख्यमंत्री के अनुसार, अधिग्रहित भूमि को लैंड बैंक के रूप में रखा जाएगा. लेकिन पॉस्को परियोजना के बंद होने के बाद अपनी जमीनों को वापस पाने का सपना पाले लोग लैंड बैंक की इस घोषणा से गुस्से में हैं. लैंड बैंक की घोषणा ने बारह साल पहले शुरू हुए विद्रोह की आग को फिर से जला दिया है. स्थानीय लोगों और दलों का मानना है कि अपनी जमीन और आजीविका बचाने के लिए 12 साल पहले जो लड़ाई लोगों ने लड़ी थी, वो एक बार फिर शुरू हो सकती है और निकट भविष्य में एक और हिंसक आंदोलन सामने आ सकता है. इस प्रोजेक्ट के कारण प्रभावित हुए क्षेत्र के सभी लोगों की जुबान पर यही सवाल है कि नवीन पटनायक सरकार ने 12 साल पहले पॉस्को के नाम पर इनसे जमीन लिया था, लेकिन अब किनके लिए लैंड बैंक की बात की जा रही है? लोगों का कहना है कि पॉस्को प्रोजेक्ट बंद तो हो गया, लेकिन इसने हमें भूमिहीन बना दिया. अब सरकार उन जमीनों का लैंड बैंक बनाकर हमारी जीविका पर कुठाराघात कर रही है. 61 वर्षीय दुखी, 56 साल की विकलांग गुरई दास, 72 साल के बाबाजी सामंतरे, पूरी तरह से लकवाग्रस्त लक्ष्मण पारामणिक और अपने दोनों बेटों को खो चुके बुजुर्ग नारायण मंडल जैसे सैंकड़ों ग्रामिण अब लैंड बैंक से अपनी जमीनें बचाने की लड़ाई के लिए तैयार दिख रहे हैं. हालांकि किसान अब भी सरकार से गुहार लगा रहे हैं कि लैंड बैंक बनाने की प्रक्रिया को बंद कर, उन्हें उनकी जमीनें उन्हें लौटा दी जाय. ढिंकिया, गोबिंदपुर, नौगान, गड़कुजांग और पटनगढ़ के प्रभावित किसान अब 12 साल बाद अपनी जमीनों को वापस पाने के लिए एकजुट हो रहे हैं. पॉस्को से छुटकारा पाने के बाद अब वे लैंड बैंक के मुद्दे पर अपनी लड़ाई जारी रखना चाहते हैं. इस मामले में किसी भी फैसले के प्रति उन्होंने सरकार को भी आगाह कर दिया है.

पॉस्को को बंद करने की आधिकारिक घोषणा के बाद भी स्थानीय आबादी का संघर्ष और विद्रोह खत्म होने का नाम नहीं ले रहा है. इसका कारण है, पॉस्को के लिए अधिग्रहित की गई जमीनों का लैंड बैंक बनाने के संबंध में मुख्यमंत्री की टिप्पणी. मुख्यमंत्री के अनुसार, अधिग्रहित भूमि को लैंड बैंक के रूप में रखा जाएगा. लेकिन पॉस्को परियोजना के बंद होने के बाद अपनी जमीनों को वापस पाने का सपना पाले लोग लैंड बैंक की इस घोषणा से गुस्से में हैं.

बाबा सामंतरे

प्रशासन की ज्यादती से परेशान लोग

12 साल बाद अब यहां लोगों को एक नई समस्या का सामना करना पड़ रहा है. एक ग्रामीण रमेश जेना के पान के बगीचे को स्थानीय प्रशासन और ओड़ीशा औद्योगिक निगम (आईडीसीओ) ने जानबूझकर बर्बाद कर दिया और उन्हें कोई मुआवजा भी नहीं दिया गया. इसी तरह, किशोर बर्धान के दो बड़े पान बगीचों को पुलिस की मदद से उजाड़ दिया गया. हालांकि बाद में उन्हें प्रशासन की तरफ से मुआवजे के रूप में 1,60,000 का चेक दिया गया और बाकी का पैसा बाद में देने का वादा किया गया. लेकिन बर्धान को उसके बाद कुछ नहीं मिला. एक–दो ही नहीं, सैकड़ों लोग इस तरह की अमानवीय घटना की शिकायत कर रहे हैं. अब लोग ये मांग कर रहे हैं कि सरकार ऐसी शिकायतों की जांच कराए. ये भी कहा जा रहा है कि आईडीसीओ के कुछ भ्रष्ट अधिकारी मुआवजे का पैसा गबन कर गए, जिससे पीड़ितों तक मुआवजे की राशि नहीं पहुंच पाई. ऐसी भी घटना सामने आई थी जिसमें अधिकारियों ने उन पान के बगीचों की बर्बादी के एवज में देने वाले मुआवजे का वाउचर बनाकर पैसा उठा लिया, जो हैं ही नहीं.

इस पूरे मामले से समझा जा सकता है कि विकास की सुंदर तस्वीर विदेशी पैसे के गलत निवेश से किस प्रकार बदरंग हो सकती है. 52 हजार करोड़ का एक प्रोजेक्ट किस प्रकार से विकास की जगह विनाश का कारण बन गया, ये इसका कोई भुक्तभोगी ही समझ सकता है. अब समय है ये समझने का कि विकास के नाम पर किया गया कॉर्पोरेट इनवेस्टमेंट किस प्रकार से लोगों को विनाश के केंद्र में ले जाकर खड़ा कर देता है. पॉस्को की तरफ से लोगों को प्रति एकड़ कितना कम मुआवजा दिया गया है, इसे इस बात से समझा जा सकता है कि वो इनके पान के बगीचों से होने वाली महज छह माह की कमाई के बराबर है. लोग अब उन मुआवजों के पैसों को वापस करने की तैयारी में हैं. अब समय आ गया है कि वहां के जल–जंगल–जमीन और लोगों की आजीविका के साधनों जैसे, पान के बगीचों, मछली पालन और फसलों की सुरक्षा की जाय और सरकार उन्हें उनकी जमीनें वापस करे. अगर ऐसा नहीं होता है, तो लोगों का आक्रोश एक बड़े जन आंदोलन का रूप ले सकता है. ■

feedback@chauthiduniya.com

मोदी सरकार ने तीन साल में हटाए 1159 पुराने क़ानून

क़ानूनी किताब का 'अंग्रेज़ी' पाठ

कानून की किताब में जितने नए अध्याय जुड़े हैं, उससे कहीं अधिक हटाए गए हैं. ये ब्रिटिशकालीन अध्याय कानूनी किताब में आर्काइव की तरह पड़े थे. प्रधानमंत्री मोदी ने तत्परता दिखाते हुए करीब बारह सौ पुराने कानूनों को एक झटके में हटा दिया. हालिया रूस के दौरे पर उन्होंने इस बात की ताकीद भी की, लेकिन विधिवेत्ताओं का कहना है कि अगर इन्हें नहीं भी हटाया जाता, तो इससे देश की न्यायप्रणाली पर कोई ज्यादा असर नहीं पड़ता. अब भी कई ऐसे ब्रिटिशकालीन कानून हैं, जिनका उपयोग शासक या अभिजात्य वर्ग स्वहित रक्षा के लिए करता है और इसे हटाने पर कोई सरकार विचार नहीं करती है.

चंदन राय

आजादी के 70 साल बाद भी हमारे देश में कानून निर्माताओं को इतना समय नहीं मिला कि वे ब्रिटिशकालीन कानूनों की समीक्षा कर सकें. अपनी महत्ता खो चुके ये कानून आज भी पुरानी किताबों में रखे मोर पंख की तरह सुसज्जित और सौंदर्यबोध की नुमाइशी चीज बनकर रह गए हैं. हाल यह है कि हम तो औपनिवेशकालीन कानूनों का पालन कर रहे हैं, जबकि ब्रिटेन ने खुद कई ऐसे पुराने कानूनों से या तो पल्ला झाड़ लिया है या फिर उसमें संशोधन किया है.

'प्रतिकूल कब्जा' कानून पर एक नजर डालते हैं. यह कानून उन लोगों के लिए एक चेतावनी है, जो लंबे समय से अपने घर से दूर रहकर शहरों में काम कर रहे हैं. मुमकिन है कि जब आप लंबे समय बाद अपने गृहनगर जाएं, तो देखें कि आपकी संपत्ति पर कोई कब्जा कर बैठा हो. राहत की बात है कि कुछ वर्ष पूर्व सुप्रीम कोर्ट ने 'प्रतिकूल कब्जा' कानून को न्यायिक तंत्र की वैधता पर काला धब्बा करार दिया है. इसके तहत अगर कोई व्यक्ति 12 साल तक आपकी संपत्ति पर कब्जा जमाए है, तो कुछ निश्चित हालात के तहत वह संपत्ति उसी की हो जाएगी. दिलचस्प यह है कि जिस देश में यह कानून विकसित हुआ, वहां इसमें अब तक कई संशोधन हो चुके हैं, लेकिन हमारी लचर व्यवस्था समीक्षा करना तो दूर, आज तक उसी कानून के मद्देनजर फैसला सुनाती रही है. कह सकते हैं कि इन कानूनों की मौजूदगी में कोर्ट भी ऐसे मामलों में फैसला सुनाने के दौरान बेबस नजर आता है. ब्रिटिश काल का यह कानून अदालतों से आज तक ऐसे फैसले पर मुहर लगाता रहा है, जो अतार्किक और असंगत है. एक फैसले में ब्रिटिश न्यायालय ने भी इस कानून को 'मालिक के लिए कठोर और कब्जाधारियों के हित में' करार दिया था.

"**अब** मैकाले के दौरान के कानूनों की समीक्षा वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर होनी चाहिए. परिस्थितियों और समय के अनुसार अपराध के तौर-तरीके बदले हैं. अब भी तमाम ऐसे कानून हैं, जो देश की कानून-व्यवस्था पर बोझ की तरह हैं, जिन्हें हटाया जाना जरूरी है. अब आर्म्स एक्ट को ही देख लें. दुनिया भर में आर्म्स एक्ट को लेकर कोई कानून नहीं मिलेगा, लेकिन वहां अपराध को लेकर सख्त कानून हैं.

-दीपक द्विवेदी, अधिवक्ता"

पुराने कानूनों के लौटे अच्छे दिन

64 साल में जहां देश की गैर भाजपा सरकारों ने मात्र 1301 कानून हटाए थे, वहीं यह सरकार केवल तीन साल में ही 1159 पुराने कानूनों को हटा चुकी है. कह सकते हैं कि भाजपा को जहां राज्यसभा में नया बिल पास कराने के लिए विपक्ष का मान-मनौव्वल करना पड़ता है, वहीं पुराने कानूनों को हटाने में मोदी सरकार दस कदम आगे है. हाल में पुराने कानूनों को हटाने के लिए दो बिल पास किए गए थे, जिनके तहत 1053 कानून हटाए गए. इसमें पहला है विनियोग अधिनियम (लेखानुदान) बिल 2015. इसके तहत 758 पुराने विनियोजन अधिनियमों को हटाया गया. दूसरा है-निसरन और संशोधन बिल, 2015. इसके तहत 295 अधिनियमों को हटाया गया था. हटाए गए पुराने कानूनों में दो दर्जन से अधिक अंग्रेज कालीन थे, जो वर्तमान परिस्थितियों में अपना महत्व खो चुके थे. क्रिमिनल लॉ, कॉन्ट्रैक्ट लॉ, कंपनी लॉ, लेबर लॉ, प्रॉपर्टी लॉ जैसे कई कानूनों को संशोधित कर इन्हें नया रूप दिया गया. नए कानून में सम्मिलित कर लेने के बाद अभी कई और ऐसे पुराने कानून हैं, जो अनुपयोगी हो गए हैं. भारत में कानून की किताब में 300 से अधिक कानून हैं जो ब्रिटिश शासन के समय से चले आ रहे हैं. श्रम, निजी कंपनियों और बैंकों के राष्ट्रीयकरण, टैक्स वसूली के कुछ कानून बेकार और इस्तेमाल से बाहर हैं. इनका इस्तेमाल अक्सर लोगों को परेशान करने में किया जाता है. खबर है कि सरकार ऐसे चार सौ पुराने कानूनों को भी जल्द हटाने जा रही है.

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अक्टूबर 2016 को नई दिल्ली स्थित विज्ञान भवन में कहा था कि कानून स्थिर होना चाहिए, लेकिन मूक नहीं. उनका आशय था कि कानून में स्थिरता तो हो, लेकिन वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार उनमें परिवर्तन भी होते रहना चाहिए. समय-समय पर कानूनों की समीक्षा होते रहने से उनकी प्रासंगिकता और जीवंतता बनी रहती है. प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने सरकार बनने से पहले चुनाव प्रचार के दौरान पुराने और अप्रासंगिक कानूनों को हटाने या उनमें संशोधन करने का वादा किया था. उन्होंने कहा था कि बेकार कानूनों से भारत को निजात दिलाना भी उनका एक मिशन है.

किसकी गोपनीयता, सत्ता की या देश की

शासकीय गोपनीयता कानून-1923 की बात करें, तो अंग्रेजों ने भारत पर सत्ता कायम रखने व अपने काले-कारनामों को छुपाने के लिए इस कानून का सहारा लिया था. आजाद भारत ने आंख मूंदकर इन ब्रिटिशकालीन कानूनों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया. हाल में कई सरकारी आयोगों व समितियों ने शासकीय गोपनीयता कानून को समाप्त करने की सिफारिश की थी, पर सरकार इसे नजरअंदाज कर रही है. विपक्ष में सभी राजनीतिक दल शासकीय गोपनीयता कानून को काला कानून बताकर सरकार से इसे हटाने की मांग करते हैं, लेकिन सत्ता में आते ही देश की सुरक्षा, एकता व अखंडता की रक्षा के लिए इसे जरूरी बताने लगते हैं. वीरप्पा मोइली आयोग ने सुझाव दिया है कि यदि सरकार शासकीय गोपनीयता कानून के कुछ प्रावधानों को जरूरी मानती है, तो उसे राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम में शामिल कर सकती है. इसके बावजूद इस कानून का प्रभावी होना सत्ता के लोकतंत्र विरोधी चेहरे को ही परिलक्षित करता है.

वाहन मालिकों का हित सर्वोपरि

अब बात करते हैं ब्रिटिश कालीन मोटर वाहन अधिनियम की. ब्रिटिश राज में अधिकतर वाहन मालिक अंग्रेज थे, वहीं कुछ भारतीय वाहन मालिक राजे-रजवाड़ों से जुड़ा अभिजात्य तबका था. जाहिर है कि मुट्ठी भर लोगों के लिए बने मोटर वाहन कानून में जनसामान्य के हितों को महत्व नहीं दिया गया. आजादी के बाद जब इस कानून को अपनाया गया, तब किसी वाहन से घायल होने वाले पक्ष के हिस्से में जो क्षतिपूर्ति आई वो उस समय के लिहाज से तो ठीक थी, मगर मुद्रा के अवमूल्यन को देखते हुए इसमें मामूली इजाफा ही किया गया.

"**राजद्रोह** कानून को ही ले लें. सरकार ड्रेकोनियन मानसिकता के तहत खुलकर इस कानून का इस्तेमाल कर रही है. कानून भी हमें इस बात की इजाजत देता है कि सरकार या उसकी नीतियों का विरोध करना राजद्रोह के दायरे में नहीं आएगा, जब तक कि आप लोगों को देश के खिलाफ हिंसा के लिए नहीं उकसा रहे हों. लेकिन आज हो क्या रहा है? जिस किसी पर, चाहे वो समाजसेवक हो या छात्र, राजद्रोह का मुकदमा डाल दिया जाता है.

-राम प्रसाद दुबे, अधिवक्ता"

समलैंगिकता पर छिड़ा वार

समलैंगिकता को अपराधीकृत करने वाले ब्रिटिशकालीन कानून पर सुप्रीम कोर्ट ने 2016 में पुनर्विचार की सहमति दी थी. इससे पूर्व दिल्ली हाईकोर्ट ने 2009 में व्यस्क व्यक्तियों के बीच समलैंगिक संबंधों को वैध माना था. साथ ही आईपीसी की धारा 377 के एक पक्ष को गैर संवैधानिक माना था. इसके बाद 2013 में सुप्रीम कोर्ट ने हाईकोर्ट के फैसले को पलटते हुए समलैंगिकता को गैर कानूनी करार दिया था. सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले को पांच न्यायाधीशों की पीठ को सौंप दिया है.

विवादों में घिरा राजद्रोह कानून

राजद्रोह कानून को हटाने की मांग हाल में जद-यू के वरिष्ठ नेता शरद यादव ने की थी. उन्होंने कहा था कि देशद्रोह का कानून अंग्रेजी शासनकाल में लागू किया गया था. इसका छात्रों और युवाओं पर प्रयोग करने से देश बंट जाएगा. जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) के कुछ छात्रों पर देशविरोधी नारे लगाने के बाद यह कानून इन दिनों काफी चर्चा में रहा है. ■

बेनामी संपत्ति क़ानून पर राजनीति

1988 में बेनामी संपत्ति के लिए कानून पास किया गया था, लेकिन इतने साल बीत जाने के बाद भी इसे नोटिफाई नहीं किया गया. इस पर राजनीति तो खूब होती रही, लेकिन शासकों ने इसे लागू करना गैर जरूरी समझा. हाल में मोदी सरकार ने इस कानून में माकूल परिवर्तन कर इसे नोटिफाई किया है. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने विपक्ष को आड़े हाथों लेते हुए कहा था कि मैं आगे कोई कदम उठाऊंगा तो आप चिल्लाएंगे कि आखिर हमने बेनामी संपत्ति का कानून पारित क्यों किया है? आप कहेंगे कि मोदी ने जल्दबाज़ी क्यों कर दी? आपने 88 से अब तक उसे लागू नहीं किया, देश में बेनामी संपत्ति इकट्ठी करने वालों को खुली छूट दे दी. ■

समय के साथ बदले नजरिया

1 अधिवक्ता दीपक द्विवेदी कहते हैं कि अब मैकाले के दौरान के कानूनों की समीक्षा वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर होनी चाहिए. परिस्थितियों और समय के अनुसार अपराध के तौर-तरीके बदले हैं. अब भी तमाम ऐसे कानून हैं, जो देश की कानून-व्यवस्था पर बोझ की तरह हैं, जिन्हें हटाया जाना जरूरी है. अब आर्म्स एक्ट को ही देख लें. दुनिया भर में आर्म्स एक्ट को लेकर कोई कानून नहीं मिलेगा, लेकिन अपराध को लेकर सख्त कानून हैं. ये कानून भारतीयों का दमन करने के लिए ब्रिटिश लोगों ने बनाए थे, लेकिन आज भी हम आंख मूंद कर इन कानूनों को मान रहे हैं. गैर भाजपा सरकार इन कानूनों की समीक्षा को लेकर हिम्मत ही नहीं जुटा पाई. अब प्रतिकूल कब्जा कानून को ही देखें, जिसकी संपत्ति है, इस पर मालिकाना हक तो उसी का होना चाहिए. सजा तो उसे मिलनी चाहिए, जो 12 साल से दूसरे की संपत्ति पर कब्जा जमाकर बैठा है. ये सभी कानून अपने फायदे के लिए ब्रिटिश लोगों ने बनाए थे, इन्हें हटाया जाना जरूरी है. मोटर वाहन अधिनियम को ही देखें. सड़क दुर्घटना में मौत होने पर वाहन मालिकों पर आईपीसी की धारा 304 ए के तहत गैर इरादतन हत्या का मामला दर्ज किया जाता है, जिसमें आसानी से कोर्ट से जमानत मिल जाती है. वहीं पीड़ित पक्ष को नाममात्र का मुआवजा मिलता है. सुप्रीम कोर्ट ने कई बार सरकार से इन कानूनों की समीक्षा के लिए कहा है. जो किताब में लिखा है, केवल वही नहीं फैसला देना है. कई मामलों में समय और परिस्थितियों का भी ख्याल रखना होगा.

2 वकील रामप्रसाद दुबे बताते हैं कि देश में अब भी कई उपनिवेशकालीन कानून चल रहे हैं, जिन्हें हटाए जाने की जरूरत है. ये कानून सिर्फ इसलिए चलाए जा रहे हैं, क्योंकि इनसे सताधारी पार्टियों का हित जुड़ा है. राजद्रोह कानून को ही लें. सरकार ड्रेकोनियन मानसिकता के तहत खुलकर इस कानून का इस्तेमाल कर रही है. कानून भी हमें इस बात की इजाजत देता है कि सरकार या उसकी नीतियों का विरोध करना राजद्रोह के दायरे में नहीं आएगा, जब तक कि आप लोगों को देश के खिलाफ हिंसा के लिए नहीं उकसा रहे हों. लेकिन आज हो क्या रहा है? जिस किसी पर, चाहे वो समाजसेवक हो या छात्र, राजद्रोह का मुकदमा डाल दिया जाता है. कई मामलों में देखें तो कानून बदल जाते हैं, पर प्रावधान वही रखे जाते हैं. टाडा हट गया, आज पोटा आ गया. राज्यों में भी मकोका जैसे कानूनों को तवज्जो दिया जा रहा है. अब अफस्पा को ही देख लें. इस दमनकारी कानून की आड़ में हम नॉर्थ ईस्ट या कश्मीर के अपने लोगों को भी पराया बना दे रहे हैं. इन कानूनों को लागू करने से इन राज्यों में स्थिति और बिगड़ी है. अब एडल्टरी कानून को ही देखें, तो इसके अनुसार पति को विवाहेत्तर संबंध रखने की पूरी आजादी है, लेकिन अगर पत्नी ऐसा करती है, तो पति को यह अधिकार है कि वह इस कानून के तहत शिकायत दर्ज कर सकता है. यानि पत्नी ने अफेयर किया तो वह कानूनन दंड की भागी होगी. ऐसे कई औपनिवेशिक या औपनिवेशिक सोच के कानून अब भी हैं, जिनकी समीक्षा होनी चाहिए.

3 वकील विवेक भदौरिया बताते हैं कि सरकार सिर्फ यह दिखाना चाहती है कि हम कुछ कर रहे हैं. इन कानूनों को अगर नहीं भी हटाया जाता, तो इससे ज्यूडिशियरी सिस्टम पर कोई फर्क नहीं पड़ता. सिर्फ राजनीतिक कारणों से ऐसा किया गया है. अगर सरकार को कुछ करना ही था, तो राजद्रोह, अफस्पा जैसे कानूनों को हटाने पर विचार करना चाहिए या फिर इन कानूनों की समीक्षा करनी चाहिए. दरअसल सत्ता पक्ष हो या विपक्ष, कोई भी यह नहीं चाहता कि ऐसे कानून जो शासक वर्ग के हित में हैं, उन्हें हटाया जाए. अगर शासक वर्ग स्वहितों की रक्षा के लिए ऐसे कानूनों को हटाने पर विचार नहीं करती, तब सुप्रीम कोर्ट को ही पहल करनी होगी. सुप्रीम कोर्ट कई फैसलों में सरकार को यह निर्देश देती रही है कि इन कानूनों में सुधार की जरूरत है या अभी तक क्यों ऐसा नहीं किया गया?

स्वच्छ भारत अभियान (ग्रामीण)

ऐसे स्वच्छ नहीं होगा भारत

स्वच्छता का पूर्ण लक्ष्य हासिल करने के लिए सभी विद्यालयों, आंगनबाड़ी केन्द्रों में स्वच्छता सुविधाएं उपलब्ध कराने और जहां आवश्यकता हो वहां सामुदायिक शौचालय सुविधाओं की व्यवस्था कराने की योजना बनाई गई है. ठोस और तरल कचरा प्रबंधन में सुधार स्वच्छ भारत अभियान (ग्रामीण) की एक महत्वपूर्ण कड़ी है.

आर.वी. रामा मोहन

भारत सरकार ने स्वच्छ भारत अभियान 2 अक्टूबर 2014 को प्रारंभ किया था. इस अभियान का उद्देश्य स्वच्छता अभियान चलाकर एक साफ-सुथरा देश बनाना था. इसके दो प्रमुख उप-अभियान हैं, ग्रामीण और शहरी, जो ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की स्वच्छता पर ध्यान केंद्रित करते हैं. इस अभियान का लक्ष्य 2019 तक पूर्ण स्वच्छता का लक्ष्य हासिल करना है. इस पहल से यह उम्मीद भी रखी गई है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की बेहतर छवि बने और दुनिया भर में इसे रहने, यात्रा और निवेश करने के लिए एक बेहतर स्थान के रूप में देखा जाए.

इस अभियान के तहत भारत के अधिकतर राज्यों में घरेलू शौचालय (आईएचएचएल) निर्माण के लिए प्रोत्साहन राशि 10,000 से बढ़ा कर 12,000 कर दी गई है. इसे केंद्र और राज्य दोनों 75:25 के अनुपात में वहन करेंगे. आंध्र प्रदेश जैसे कुछ राज्य नेशनल रूरल एम्प्लायमेंट गारंटी स्कीम (नरेगा) की मद से 3000 रुपए की अतिरिक्त राशि स्नान सुविधाओं के साथ शौचालय बनाने के लिए दे रहे हैं. स्वच्छता का पूर्ण लक्ष्य हासिल करने के लिए सभी विद्यालयों, आंगनबाड़ी केन्द्रों में स्वच्छता सुविधाएं उपलब्ध कराने और जहां आवश्यकता हो वहां सामुदायिक शौचालय सुविधाओं की व्यवस्था कराने की योजना बनाई गई है. ठोस और तरल कचरा प्रबंधन में सुधार स्वच्छ भारत अभियान (ग्रामीण) की एक महत्वपूर्ण कड़ी है.

15 नवम्बर 2015 को केंद्र सरकार ने इस अभियान के लिए भारत में सभी कर योग्य सेवाओं पर 0.5 प्रतिशत का स्वच्छ भारत उपकर लगाया. इसके अलावा, 24 नवम्बर 2014 को स्वच्छ भारत कोष (क्लीन इंडिया फंड) की स्थापना की गई ताकि कॉर्पोरेट सामाजिक दायित्व निधि (सीएसआर), व्यक्तियों, संस्थागत दाताओं और अप्रवासी भारतीयों से फंड हासिल किया जा सके.

मार्च 2016 में अभियान ने लक्ष्य प्राप्ति के लिए 60 महीनों की निर्धारित समय सीमा में से 18 महीने पूरे कर लिए हैं. 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 16,78,26,730 ग्रामीण परिवार रहते हैं. इनमें से 67.3 प्रतिशत परिवार खुले में शौच करते हैं और केवल 35 प्रतिशत परिवारों के आवास परिसर में पेयजल उपलब्ध है. इस अभियान के दौरान 18 महीनों में रिकॉर्ड एक करोड़ 76 लाख शौचालयों का निर्माण किया गया. इससे घर में शौचालय बनाने वाले परिवारों का दायरा 42.12 प्रतिशत से बढ़कर 51.83 प्रतिशत हो गया.

इसका मतलब यह है कि एसबीएम (ग्रामीण) को 2 अक्टूबर 2019 से पहले गांवों में ठोस और तरल कचरों के निष्पादन के साथ-साथ शेष 8 करोड़ 8 लाख परिवारों के लिए शौचालय का निर्माण करना होगा. लिहाज़ा कार्य की रफ़्तार को देखकर ग्रामीण क्षेत्रों में 100 प्रतिशत लक्ष्य की प्राप्ति दूर की कौड़ी लगती है.

जनवरी 2016 के अंत तक, स्वच्छ भारत कोष में 369.74 करोड़ रुपए का अनुदान जमा था. हालांकि स्वच्छ भारत कोष के दिशानिर्देशों के अनुसार पानी की आपूर्ति बढ़ाने और ख़राब हो चुके शौचालयों की मरम्मत को प्राथमिकता दी गई है, लेकिन इस कोष का अधिकांश धन अब नए शौचालयों के निर्माण पर खर्च हो रहा है. स्वच्छ भारत उपकर के मद में जमा राशि की जानकारी अभी तक सार्वजनिक नहीं की गई है.

एसबीएम (ग्रामीण) के दिशानिर्देशों में राज्य और जिला स्तर में रैपिड एक्शन और लर्निंग यूनिट्स (आरएलयू) की स्थापना की बात की गई है. इनका काम फील्ड स्तर की सर्वोत्तम कार्यप्रणाली का पता लगाकर उसे अभियान के कार्यान्वयन में शामिल करना है. हालांकि जुलाई 2015 में एक राष्ट्रीय स्तर की आरएलयू की स्थापना की अधिसूचना जारी कर दी गई थी, लेकिन आंध्र प्रदेश और छत्तीसगढ़ को छोड़कर किसी राज्य ने अभी तक इस प्रावधान को गंभीरता से नहीं लिया है. एसबीएम (ग्रामीण) में सुधार, खुले शौचालय को कम करने और एसएलडब्ल्यूएम में राज्यों के बेहतर प्रदर्शन को प्रोत्साहित करने के लिए मार्च 2016 में केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 150 करोड़ डॉलर की विश्व बैंक की परियोजना को मंजूरी दी.

शौचालय निर्माण के बाद प्रोत्साहन की अंतिम किस्त दी जाती है. इसके बाद विभाग, शौचालय के ढांचे की माप लेता है. इस तरह गरीब परिवार, विशेष रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के परिवारों को शौचालय बनाने के लिए पहले अपने जेब से पैसा खर्च करना होगा. दरअसल यह एक ऐसी अड़चन है, जो अभियान की प्रगति को धीमी कर रही है. दिसंबर 2015 में एक फील्ड स्टडी के दौरान लेखक द्वारा एकत्रित आंकड़ों ने इस तथ्य को बिलकुल स्पष्ट कर दिया. विभिन्न समुदायों के 3,335 घरों के कुल सैंपल में से केवल 13.2 प्रतिशत घरों में शौचालय, स्नान कक्ष और पानी का कनेक्शन था, जबकि 764 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के परिवारों में से केवल 5.1 प्रतिशत के पास ही ये सुविधाएं थीं.

हालांकि, इस योजना को लागू करने में अभी कुछ समय लग सकता है.

अभियान की अड़चनें

ग्रामीण परिवारों के व्यवहार में परिवर्तन लाना एक चुनौतीपूर्ण काम है, क्योंकि ब्लॉक और जिला स्तरों पर अभियान को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक कौशल और जनशक्ति का अभाव है. शौचालयों की स्वीकृति और उपयोग के लिए एक और महत्वपूर्ण शर्त पर्याप्त पानी की उपलब्धता है. जब तक एसबीएम (ग्रामीण) पानी की आपूर्ति सुनिश्चित नहीं करता है, तब तक लोग नवनिर्मित शौचालयों का इस्तेमाल नहीं करेंगे.

एसबीएम के अंतर्गत प्रोत्साहन राशि जारी करने की प्रक्रिया को सरल कर दिया गया है, जिसमें कुल भुगतान केवल दो किश्तों में किया जाता है. जब स्वच्छता विभाग के अधिकारी किसी परिवार को शौचालय निर्माण की मंजूरी दे देंगे, तब उस परिवार को शौचालय के आधार के निर्माण के लिए खुद 6 हजार रुपए खर्च करने पड़ेंगे. इसके बाद ही उस परिवार को उतनी ही प्रोत्साहन राशि की पहली किस्त मिलेगी.

शौचालय निर्माण के बाद प्रोत्साहन की अंतिम किस्त दी जाती है. इसके बाद विभाग, शौचालय के ढांचे की माप लेता है. इस तरह गरीब परिवार, विशेष रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के परिवारों को शौचालय बनाने के लिए पहले अपने जेब से पैसा खर्च करना होगा. दरअसल यह एक ऐसी अड़चन है, जो अभियान की प्रगति को धीमी कर रही है. दिसंबर 2015 में एक फील्ड स्टडी के दौरान लेखक द्वारा एकत्रित आंकड़ों ने इस तथ्य को बिलकुल स्पष्ट कर दिया. विभिन्न समुदायों के 3,335 घरों के कुल सैंपल में से केवल 13.2 प्रतिशत घरों में शौचालय, स्नान कक्ष और पानी का कनेक्शन था, जबकि 764 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के परिवारों में से केवल 5.1 प्रतिशत के पास ही ये सुविधाएं थीं.

सेंटर फॉर वर्ल्ड सॉलिडेरिटी, हैदराबाद के तत्वाधान में सस्टेनेबल ग्राउंड वाटर मैनेजमेंट (एसओजीडब्ल्यूएम) परियोजना पर किए गए फील्ड स्टडी में पाया गया कि गांवों में बड़ी संख्या में शौचालय ख़राब पड़े हैं. एस-ओजीडब्ल्यूएम परियोजना के अधिकारियों ने 2011-12 में तेलंगाना और आंध्र प्रदेश के छह ग्राम पंचायतों के कुल 3317 घरों के अध्ययन में पाया कि 1161(35 प्रतिशत) परिवारों में पिछले दशक के दौरान सरकारी मदद से बनाए गए शौचालय बेकार हो गए हैं. जब तक एसएमबी (ग्रामीण) के तहत उन परिवारों को अपने शौचालय ठीक करने के बारे में प्रेरित नहीं किया जाता है, तब तक गांवों को खुले में शौच से मुक्ति दिलाना मुश्किल होगा. फिलहाल, 2011 की जनगणना या एसबीएम के आंकड़ों में बेकार पड़े शौचालयों का कोई उल्लेख नहीं है यानि इनके मुताबिक सभी शौचालय उपयोग में हैं.

सुधारात्मक उपाय

एसबीएम (ग्रामीण) के समक्ष तीन मुख्य बाधाएं हैं. पानी की आपूर्ति के अभाव में शौचालयों की स्वीकृति और इस्तेमाल का प्रभावित होना, लाभार्थी परिवारों द्वारा निर्माण पर आंशिक शुरुआती खर्च और गांवों में कई बेकार शौचालयों का होना.

शौचालयों का उपयोग बढ़ाने में पानी आपूर्ति की भूमिका को राज्य और केंद्र सरकार ने भी स्वीकार किया है, लेकिन कार्यान्वयन के स्तर पर कोई रणनीति नहीं अपनाई गई. एसबीएम (ग्रामीण) के तहत चयनित गांवों में पर्याप्त पानी की आपूर्ति उपलब्ध कराने के लिए एसबीएम ने संयुक्त दृष्टिकोण अपनाने की वकालत की है, लेकिन अभी तक जिला स्तर पर इसका कोई कार्यान्वयन नहीं हुआ है. इसके तहत प्रत्येक ब्लॉक से कुछ गांवों को चुन लिया जाता है. फिर इन गांवों को ओडीएफ (यानी खुले में शौच मुक्त) बनाने के लिए प्रयास किए जाते हैं. इसके बाद उन परिवारों की पहचान की जाती है जिनके पास शौचालय नहीं हैं. इसके बाद उन्हें शौचालय निर्माण के लिए प्रेरित किया जाता है. शौचालय बन जाने के बाद इसका उपयोग हो रहा है या नहीं, इसकी जांच की जाती है. कुछ गांवों में गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) को इस काम के लिए अनुबंधित किया जाता है,

स्वच्छता अभियान के लिए किसी गांव की पहचान कर लेने के बाद जल वितरण नेटवर्क को ठीक करने के लिए भी निवेश किया जाना चाहिए. सभी घरों तक जल कनेक्शन सुनिश्चित किया जाना चाहिए. ग्राम पंचायतों को बेहतर जल आपूर्ति और रख-रखाव की प्रणाली विकसित करनी चाहिए. और सबसे महत्वपूर्ण यह कि पानी की आपूर्ति को सुचारू रूप से जारी रखने के लिए भूजल स्रोतों की निरंतरता पर जोर दिया जाना चाहिए. इन उपायों के अभाव में पर्याप्त पानी की आपूर्ति नहीं हो पाएगी (खास तौर पर सूखे जैसे हालात में) और गांववाले फिर से खुले में शौच के लिए मजबूर होंगे.

शौचालयों के इस्तेमाल को पानी की आपूर्ति के साथ जोड़ने से महिलाओं की भागीदारी बढ़ेगी और स्वच्छता अभियान में तेजी आएगी. गांवों में एक चीज़ और देखी गई है कि वहां महिलाएं पर्याप्त पानी की आपूर्ति के अभाव में शौचालय निर्माण में ज्यादा दिलचस्पी नहीं लेती हैं. ऐसे में शौचालय के लिए पानी लाने की ज़िम्मेदारी उन्हीं के सिर पर आ जाती है. जिन परिवारों के पास पानी की आपूर्ति नहीं है, उन्हें एसबीएम (ग्रामीण) के तहत शौचालय और पानी का कनेक्शन दोनों एक साथ मुहैया कराना चाहिए. राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल योजना के फंड को एसबीएम (ग्रामीण) के साथ जोड़ कर इस्तेमाल करने के साथ-साथ स्वच्छ भारत कोष को बेहतर ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है.

माइक्रो फाइनेंस तंत्र को मज़बूत करना

6000 रुपए अपनी जेब से खर्च करने की शर्त ने दूरदराज के गांवों में गरीबों, विशेषकर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों, के बीच शौचालय निर्माण की गति को धीमा कर दिया है. एक और मुद्दा शौचालय निर्माण के साथ साथ अतिरिक्त सुविधाओं के निर्माण में अधिक लागत का होना है. कई घर जब शौचालय निर्माण का निर्णय लेते हैं तो पश्चिमी शैली की शौचालय सीट और टाइल्स लगाना पसंद करते हैं और शौचालय से लगा स्नान कक्ष बनाना चाहते हैं. कुछ घर शौचालयों का आकार बढ़ाना चाहते हैं. जोड़ों की बीमारियों से ग्रस्त बुजुर्गों की सुविधा के लिए पश्चिमी शैली की टॉयलेट सीट की मांग बढ़ रही है. यह मांग फ्लोराइड प्रभावित क्षेत्रों में अधिक है. दरअसल, शौचालय के साथ स्नान कक्ष के निर्माण का खर्च बीस से पच्चीस हजार रुपए तक आता है. बार-बार सूखे से प्रभावित होने व शौचालय निर्माण में अधिक लागत की वजह से ग्रामीण परिवार पहले से स्वीकृत शौचालयों के निर्माण में विलंब करते हैं.

छोटे ऋण की उपलब्धता गरीबों को शौचालय निर्माण के लिए प्रेरित करेगी. वाणिज्यिक और अन्य बैंकों के लिए छोटे ऋण देना व्यवहार्य नहीं है. हालांकि ग्रामीण क्षेत्रों में काम कर रहे माइक्रो फाइनेंस संस्थान (एमएफआई) माइक्रो लोन देते हैं. हालांकि वे लाभ अर्जित करने वाली कंपनियां हैं और अपेक्षाकृत अधिक ब्याज दरों पर कर्ज देती हैं. इसके अलावा, स्वच्छता को बढ़ावा देने के लिए उनका कोई स्पष्ट सामाजिक उद्देश्य नहीं होता. लेकिन कई महिला स्वयं-सहायता समूह, एनजीओ द्वारा संचालित परस्पर सहयोगी सहकारी समितियां (एमएसीएस), बचत और ऋण सहकारी समितियां और किसानों की सहकारी समितियां, जो स्वयं सहायता के सिद्धांत पर काम करती हैं, हर महीने पर्याप्त मात्रा में पैसा जमा कर लेती हैं. ये अपेक्षाकृत कम ब्याज दरों पर 5000 से लेकर 30,000 रुपए तक के ऋण प्रदान करती हैं.

स्वच्छ भारत अभियान के दिशा निर्देशों में संशोधन से भारत में शौचालय निर्माण में तेजी आएगी. स्वच्छ भारत कोष का उपयोग कर जिला स्तर पर रिवोल्विंग फंड बनाई जा सकती है, जिससे स्थानीय सहकारी संस्थाओं को ऋण दिया जा सकता है. इस प्रकार, गरीबों पर ब्याज का बहुत अधिक बोझ डाले बिना, एसबीएम (ग्रामीण) को अधिक समावेशी बनाकर 2019 के लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है. इसके अलावा, जब लोग स्वेच्छा से ऋण लेकर स्वच्छता के बुनियादी ढांचे का निर्माण करते हैं, तो यह निश्चित है कि वे निर्माण की गुणवत्ता का ख्याल रखेंगे.

बेकार पड़े शौचालयों को ठीक करना

2 अक्टूबर 2014 तक ग्रामीण भारत में 42.12 प्रतिशत घरों में शौचालय थे. लेकिन इससे यह नतीजा नहीं निकलता कि वे सभी शौचालय इस्तेमाल योग्य थे. कुछ गांवों में 35 प्रतिशत शौचालय बेकार पड़े हैं या उनका उपयोग नहीं हो रहा है. पिछली सरकार की योजनाओं द्वारा वित्त पोषित कई शौचालय अधूरे थे और कुछ समय बाद बेकार हो गए थे.

सबसे पहले तो पूर्ण और अपूर्ण दोनों तरह के बेकार शौचालयों की अलग-अलग गणना की जानी चाहिए. एसबीएम (ग्रामीण) को ऐसे शौचालयों के लिए जल कनेक्शन भी उपलब्ध कराना चाहिए. 3000 रुपए के छोटे निवेश के साथ, कई ऐसे बेकार शौचालय ठीक किए जा सकते हैं. स्वच्छ भारत कोष के उद्देश्यों में बेकार हो गए शौचालयों की मरम्मत के लिए धन का इस्तेमाल करने की बात की गई है. बेकार शौचालयों की मरम्मत का मतलब आम तौर पर भर चुके टैंक की मरम्मत, टूटे हुए सीट को बदलना या शौचालय के लिए छत का निर्माण शामिल है.■

feedback@chauthiduniya.com

मिशन 2018
कहां खड़ी है कांग्रेस

मध्य प्रदेश

जावेद अनीस

मध्यप्रदेश में भाजपा बीते 14 साल से सत्ता पर काबिज है. इस दौरान यहां उसने अपनी गहरी पैठ बना ली है. उधर लम्बे समय तक सत्ता की धुरी रही कांग्रेस वहीं के वहीं कदमताल करती हुई नजर आ रही है, ना तो उसने अपनी लगातार हार से कोई सबक सीखा है और न ही कभी-कभार मिली जीत से कार्यकर्ताओं में उत्साह है. कह सकते हैं कि कांग्रेस का जनता से जुड़ाव लगातार कमजोर हुआ है. 2018 का विधानसभा चुनाव ज्यादा दूर नहीं है, लेकिन ऐसा लगता है कि पार्टी बिना किसी विजन और लक्ष्य के एक बार फिर चुनाव में उतरने जा रही है. अगर कोई चर्चा है तो बस यही कि इस बार कांग्रेस की तरफ से चेहरा कौन होगा. पार्टी में तीन कोण बन चुके हैं एक तरफ ज्योतिरादित्य सिंधिया हैं तो दूसरी तरफ कमलनाथ, तीसरे कोण पर अरुण यादव और अजय सिंह की जोड़ी है. दूसरी तरफ मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान की अगुआई में भाजपा की मिशन-2018 की तैयारियां लगभग पूरी हो चुकी हैं, चेहरा, भूमिकाएं, मुद्दे, नारे सभी कुछ तय हो चुके हैं.

कांग्रेस अपने इतिहास के सबसे बुरे दौर से गुजर रही है. अगले साल कर्नाटक, मध्य प्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ में विधानसभा चुनाव होने वाले हैं. इन चारों राज्यों में कांग्रेस एक ताकत है और उसका मुकाबला यहां सीधे तौर पर भाजपा से है. यहां क्षेत्रीय पार्टियां नहीं हैं, अगर हैं भी तो उनकी स्थिति कमजोर है. मध्यप्रदेश की बात करें तो ऐसा लगता है कि कांग्रेस हाईकमान की प्राथमिकताओं से यह प्रदेश गायब हो गया है, तभी तो दिग्विजय सिंह के बाद यहां असमंजस और संशय की स्थिति बनी है. यहां से करीब आधा दर्जन क्षत्रप अपनी ढपली अपना राग बजाते हुए नजर आ रहे हैं. किसी को पता नहीं कि किसके नेतृत्व में चुनाव लड़ा जाएगा. कार्यकर्ता दिशाहीन हैं और नेता अपनी-अपनी गोटियां फिट करने में मशगूल हैं.

यह पहली बार है कि कमलनाथ सूबे की राजनीति में इतना जोर लगाते दिख रहे हैं. वे भी मप्र के सीएम बनने का सपना देख रहे हैं और इसके लिए खामोशी से अपनी बिसात बिछाने में जुटे हैं. उनके पक्ष में दलील दी जा रही है कि यह कमलनाथ के लिए आखिरी अवसर है, जबकि सिंधिया के लिए अभी काफी वक्त है. कह सकते हैं कि वे मप्र में फ्री हैंड चाहते हैं. आर्थिक संकट से जूझ रही कांग्रेस के लिए अनुभवी और कुबेर के धनी कमलनाथ की अहमियत का अंदाजा लगाया जा सकता है.

कांग्रेस के अंदरूनी सर्वे रिपोर्ट के अनुसार, सूबे में पहली बार भाजपा सरकार के खिलाफ एंटी इनकम्बैंसी दिखाई पड़ रही है, लेकिन समस्या यह है कि पार्टी अभी यही तय नहीं कर पा रही है कि 2018 के लिए पार्टी का नेतृत्व कौन करेगा. मध्यप्रदेश की कमान संभालने को लेकर दिग्गज नेताओं में रस्साकशी की स्थिति बन गई है, जिसमें सिंधिया, कमलनाथ और अजय सिंह व अरुण यादव की जोड़ी शामिल है.

इधर आलाकमान की तरफ से एकजुटता की कोशिशें भी हुई हैं. केंद्रीय नेतृत्व के निर्देश पर प्रदेश कांग्रेस ने 22 फरवरी को विधानसभा घेराव का कार्यक्रम रखा था, जिसमें सभी दिग्गज नेता कमलनाथ, दिग्विजय सिंह, ज्योतिरादित्य सिंधिया, सुरेश पचौरी, कांतिलाल भूरिया, अरुण यादव और अजय सिंह शामिल हुए. लेकिन यह कदम भी कारगर साबित नहीं हुआ. मंच पर भले ही सभी नेता एक साथ बैठे लेकिन उनके समर्थक अपने-अपने नेताओं के नारे लगाते हुए दिखाई पड़े. नतीजे के तौर पर इस शक्ति प्रदर्शन के बाद भी संशय की स्थिति बनी हुई है. कोई भी पक्के तौर पर यह बताने की स्थिति में नहीं है कि कांग्रेस के मिशन 2018 के लिए चुनावी कमान किसके हाथ जाएगी? जून माह के अंतिम दिनों में राहुल गांधी का मध्यप्रदेश दौरा तय है. कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को उम्मीद है कि इस दौरान फैसला हो जाएगा.

अजय-अरुण की जोड़ी

अरुण यादव को खुद कांग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गांधी ने राज्य में पार्टी का नेतृत्व करने के लिए चुना था, लेकिन तमाम कोशिशों के बाद भी वे कोई प्रभाव नहीं छोड़ पाए हैं. उन्होंने कभी पदयात्रा की तो कभी पोल खोल अभियान चलाया, पर कुछ अपनी सीमाएं और कुछ कांग्रेस के अंदरूनी बिखराव के कारण वे कामयाब नहीं हो पाए और न ही जनता के दिलो-दिमाग पर कोई छाप छोड़ सके. 2008 में चुनाव से करीब डेढ़ साल पहले जिस तरह उनके पिता मरहूम सुभाष यादव को हटाया गया था, आज पार्टी में अरुण यादव के लिए भी ठीक वैसी ही स्थिति बनी है. अरुण यादव भले ही राहुल गांधी से मुलाकात कर अपनी गोटी फिट करने में लगे हों, लेकिन हालत उनके विपरीत नजर आ रहे हैं. कमलनाथ और ज्योतिरादित्य सिंधिया जैसे दो दिग्गज उनके पीछे हाथ धोकर पड़े हैं. उनके साथ अकेले अजय सिंह ही नजर आ रहे हैं, जिन्हें सत्यदेव कटारे के असामयिक निधन के बाद विधानसभा में कांग्रेस की कमान सौंपी गई है. इससे पहले जमुनादेवी के निधन के बाद भी अजय सिंह नेता प्रतिपक्ष बने थे. तब उन्हें ढाई साल का मौका मिला था, लेकिन कांग्रेस की सत्ता में वापसी नहीं हो पाई थी. इस बार अजय सिंह का मिजाज बदला हुआ नजर आ रहा है. विधानसभा में अपना पदभार ग्रहण करने से पूर्व पीसीसी में आयोजित स्वागत कार्यक्रम में उन्होंने प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष अरुण यादव के साथ 2018 में प्रदेश में कांग्रेस की सरकार बनाने का संकल्प लिया था. पिछले दिनों जब उनसे कांग्रेस की तरफ से सीएम के चेहरे के बारे में पूछा गया तब उन्होंने हंसते हुए जवाब दिया था कि मेरे चेहरे में क्या खराबी है?

सिंधिया बनाम नाथ

पिछले कुछ समय से ज्योतिरादित्य सिंधिया अपने संसदीय क्षेत्र में सक्रिय होने के साथ भोपाल में भी मेल-मुलाकात बढ़ाते हुए नजर आ रहे हैं. मध्यप्रदेश विधानसभा में नेता प्रतिपक्ष सत्यदेव कटारे के निधन के बाद खाली अटेर सीट पर हुए उपचुनाव में जिस तरह से उनके बेटे हेमंत कटारे की जीत हुई है, उसमें ज्योतिरादित्य सिंधिया की बड़ी भूमिका रही है. अटेर विधानसभा सीट जीतने के लिए भाजपा ने सत्ता एवं संगठन के सारे संसाधन झोंक दिए थे, लेकिन इसके बाद भी कांग्रेस को मिली जीत ने सिंधिया की दावेदारी को और मजबूत किया है. उन्होंने सबको साथ लेकर आगे बढ़ने की अपनी क्षमता का बेहतर प्रदर्शन किया है.

सिंधिया खुले तौर पर कह भी चुके हैं कि प्रदेश में कांग्रेस को सीएम का चेहरा प्रोजेक्ट करना चाहिए. खुद को सीएम प्रोजेक्ट करने के सवाल पर उन्होंने कहा था कि पार्टी उन्हें जो भी जिम्मेदारी सौंपेगी, उसे वे पूरी निष्ठा के साथ निभाएंगे. वे अपने बयानों में मुख्यमंत्री शिवराज सिंधिया पर लगातार हमला बोलते रहे हैं, जिससे उनकी दावेदारी को और बल मिला है.

यह पहली बार है कि कमलनाथ सूबे की राजनीति में इतना जोर लगाते दिख रहे हैं. वे भी मप्र के सीएम बनने का सपना देख रहे हैं और इसके लिए खामोशी से अपनी बिसात बिछाने में जुटे हैं. उनके पक्ष में दलील दी जा रही है कि यह कमलनाथ के लिए आखिरी अवसर है, जबकि सिंधिया के लिए अभी काफी वक्त है. कह सकते हैं कि वे मप्र में फ्री हैंड चाहते हैं. आर्थिक संकट से जूझ रही कांग्रेस के लिए अनुभवी और कुबेर के धनी कमलनाथ की अहमियत का अंदाजा लगाया जा सकता है. पिछले दिनों राजधानी के अखबारों में ख़बरें छपी थीं कि भोपाल में कमलनाथ के बंगले को रंग-रोगन कर तैयार किया जा रहा है. वे हर तरह से दबाव बनाने की पूरी कोशिश कर रहे हैं. यहां तक कि इस दौरान कमलनाथ के भाजपा में जाने की अफवाहें भी उड़ाई गई थीं. ■

feedback@chauthiduniya.com

11 संसदीय सचिवों पर लटक रही तलवार

छत्तीसगढ़

रूपेश गुप्ता

28 जून को बिलासपुर हाईकोर्ट में अहम सुनवाई होनी है, जो 11 संसदीय सचिवों के भविष्य से जुड़ी है. इनकी नियुक्ति को आरटीआई एक्टिविस्ट राकेश चौबे ने हाईकोर्ट में चुनौती दी है. इसी दिन सरकार को आखिरी बार मिली नोटिस पर अपना जवाब देना है. सरकार को बताना है कि संसदीय सचिवों की नियुक्ति किस नियम के तहत की गई थी.

राकेश चौबे ने हाईकोर्ट में अपनी याचिका में कहा है कि संसदीय सचिवों की नियुक्तियों का संविधान में कोई प्रावधान नहीं है. इनकी नियुक्ति नियम विरुद्ध की गई है. उन्होंने मांग की है कि राज्य के सभी संसदीय सचिव ऑफिस ऑफ प्रॉफिट के दायरे में आते हैं, लिहाजा उन्हें अयोग्य घोषित कर हटाया जाए. गौरतलब है कि सुप्रीम कोर्ट ने एक फैसले में कहा है अगर किसी सांसद या विधायक ने ऑफिस ऑफ प्रॉफिट का पद लिया है तो उसे अपनी सदस्यता गंवानी होगी, चाहे वेतन-भत्ता लिया हो या नहीं. छत्तीसगढ़ में हालात यह है कि सभी संसदीय सचिव कई तरह की सुविधाओं का लाभ उठा रहे हैं.

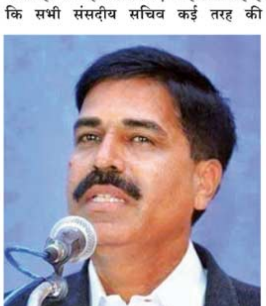

राकेश चौबे

छत्तीसगढ़ में कुल 90 विधायक हैं. इसके 15 प्रतिशत अनुपात में ही मंत्री बनाए जा सकते हैं. आंकड़ों की बात करें तो इस तरह केवल 13 मंत्री बनाए जा सकते हैं. लेकिन मुख्यमंत्री डॉक्टर रमन सिंह ने 11 संसदीय सचिव बना दिए हैं, जिन्हें भत्ता और दूसरी सुविधाएं भी मिलती हैं. याचिकाकर्ता का कहना है कि सरकार मध्य प्रदेश में 1967 के 1 नियम के आधार पर उनकी नियुक्ति को वैध ठहराती है, जबकि वह नियम राज्य मंत्रियों के लिए था. वहीं मध्यप्रदेश के नियम छत्तीसगढ़ सरकार पर लागू नहीं होते, क्योंकि इसके लिए सरकार ने कोई विधेयक पास नहीं कराया है.

इसी बात को आधार बनाकर राकेश चौबे ने सरकार और संसदीय सचिवों के खिलाफ जनहित याचिका लगाई है. इस मामले में जस्टिस दीपक गुप्ता और जस्टिस संजय अग्रवाल की खंडपीठ ने राज्य सरकार को नोटिस जारी कर यह पूछा था कि किस नियम के तहत उन्होंने संसदीय सचिवों की नियुक्ति की है. खंडपीठ ने इस पर 19 फरवरी तक जवाब मांगा था. लेकिन सरकार जवाब देने में आनाकानी करती रही और बार-बार समय लेती रही. अब उसे आखिरी बार जवाब देने का मौका मिला है. 28 जून को सरकार जवाब के साथ कोर्ट में पेश होगी. इस फैसले के बाद एक सवाल और उठेगा कि क्या ऑफिस ऑफ प्रॉफिट की परिभाषा को हर राज्य अपने तरीके से परिभाषित कर सकते हैं.

राकेश चौबे ने हाईकोर्ट में कहा कि संसदीय सचिवों की नियुक्तियों का संविधान में कोई प्रावधान नहीं है. ये सभी लाभ के पद हैं और राजनीतिक कारण से बनाए गए हैं. इसमें जनहित जैसी कोई बात नहीं है. याचिकाकर्ता ने हिमाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल और दिल्ली का उदाहरण दिया है. कांग्रेस के प्रदेश अध्यक्ष भूपेश बघेल का कहना है कि रेवड़ी की तरह संसदीय सचिवों के पद बांटे गए हैं.

क्या कहता है कानून?

संविधान के अनुच्छेद 103 (11) के तहत सांसद अथवा विधायक ऐसे किसी और पद पर नहीं रह सकते, जहां वेतन या अन्य फायदे हो रहे हों. अनुच्छेद 191(11) जनप्रतिनिधि कानून की धारा 9 ऑफिस ऑफ प्रॉफिट के तहत यह जनप्रतिनिधियों को किसी किस्म का लाभ लेने से रोकती है.

यहां ये सुविधाएं मिलती हैं संसदीय सचिवों को

रमन सरकार की ओर से 11 संसदीय सचिवों को राज्यमंत्री का दर्जा दिया गया है. मंत्रालय में अलग से कमरा, वेतन के 73,000 रुपए के अलावा 11,000 रुपए, घर दफ्तर में टेलीफोन की सुविधा, राजधानी में मंत्री जैसी सुविधा वाला बंगला, मंत्रियों की तर्ज पर सफारी गाड़ी, डीजल, सुरक्षा के लिए गार्ड आदि सुविधाएं मिलती हैं.

कौन-कौन है ऑफिस ऑफ प्रॉफिट के दायरे में

राज्य सरकार ने विधायक राजू सिंह क्षत्रिय, तोखन साहू, अंबेश जांगड़े, लखन लाल देवांगन, मोतीलाल चंद्रवंशी, लाभचंद बाफना, रूपकुमारी चौधरी, शिवशंकर पैकरा, सुनीति राठिया, चंपा देवी पावले और गोवर्धन सिंह मांझी को संसदीय सचिव बनाया है.

महत्वपूर्ण तथ्य

जया बच्चन के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने 2006 में कहा था कि अगर कोई व्यक्ति ऑफिस ऑफ प्रॉफिट का लाभ लेता है, तो वह वेतन ले रहा हो या नहीं उसे पद छोड़ना होगा. ■

feedback@chauthiduniya.com

चुनाव जीतने के लिए देश को नुक़सान मत पहुंचाइए

www.kamalmorarka.com

कमल मोरारका

बदकिस्मती से हम ऐसी दिशा में बढ़ रहे हैं, जिससे देश की शासन व्यवस्था बिगड़ जाएगी और अर्थव्यवस्था बेकाबू हो जाएगी. आम चुनाव में अभी दो वर्ष बाक़ी है. श्री मोदी को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए. यदि अगला चुनाव जीतने के लिए देश को और अधिक नुकसान पहुंचाया जाता है, तो फिर कुछ भी नहीं किया जा सकता है. अगला चुनाव वैसे भी मोदी के पक्ष में जा सकता है, क्योंकि विपक्ष कमज़ोर है. लिहाज़ा उन्हें महज़ चुनाव जीतने के लिए देश को नुकसान पहुंचाने की ज़रूरत नहीं है. वे देश को और अधिक नुकसान पहुंचाए बिना भी चुनाव जीत सकते हैं. महज़ इनोवेटिव होना और वो काम करना जो कारगर साबित नहीं हो सकते, उससे देश को दीर्घकालीन नुकसान हो सकता है.

किसान आन्दोलन ने एक ऐसा मोड़ ले लिया है, जो न सिर्फ राजनीति या सार्वजानिक जीवन से जुड़े लोगों के लिए, बल्कि अख़बार के एक आम पाठक के लिए भी चिंता की बात है. ऐसा नहीं है कि यह आन्दोलन अप्रत्याशित था, क्योंकि श्री नरेन्द्र मोदी ने अपने चुनावी भाषणों में यह वादा किया था कि वे किसानों को एक ऐसा न्यूनतम समर्थन मूल्य देंगे, जो उनकी लगत से 50 फीसद अधिक होगा. सत्ता संभालने के बाद उन्हें एहसास हुआ कि यह संभव नहीं है. सरकार के पास समुचित पैसे नहीं हैं. बाद में उन्होंने यह भी घोषणा की कि किसानों की आमदनी छह वर्षों में दोगुनी हो जाएगी. मुझे नहीं मालूम कि उनके सलाहकार कौन हैं, लेकिन वे अर्थशास्त्री नहीं होंगे, क्योंकि ये ऐसे वादे हैं जिन्हें पूरा करना असंभव है. भारत के साथ एक अच्छी बात यह है कि यहां आम आदमी, किसान और मजदूर संभावनाओं की सीमा के अन्दर रहकर काम करने के लिए तैयार रहते हैं.

बहरहाल सरकार की अपनी बाध्यताएं होती हैं. यह भी समझ में आने वाली बात है कि वे 2014 में चुनाव जीतना चाहते थे, लेकिन फिर उन्होंने साल-दर-साल ऐसे वादे क्यों किए? स्वाभाविक रूप से इससे नाराज़गी बढ़ेगी, लोगों में निराशा पैदा होगी और अशांति फैलेगी. उत्तर प्रदेश में किसानों की क़र्ज़ माफ़ी ने एक दूसरी समस्या को जन्म दे दिया है. अब अन्य राज्यों से भी कर्ज़ माफ़ी की आवाजें उठने लगी हैं. भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर भी मानते हैं कि क़र्ज़ माफ़ी की मांग बेकाबू हो जाएगी. ये बहुत ही गंभीर आर्थिक मसले हैं. जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाली सरकारों को यह श्रेय देना चाहिए कि यह जानते हुए कि लोकप्रिय योजनाओं से वोट हासिल किया जा सकता है, उन्होंने लोगों की उम्मीदों को कभी इतना नहीं बढ़ाया, जो हिंसा और अशांति का कारण बने. वे ज़िम्मेदार नेता थे और जानते थे कि कोई भी लक्ष्य हासिल करने की एक सीमा होती है.

फिलहाल प्रधानमंत्री को एक सर्वदलीय बैठक बुलानी चाहिए या कम से कम भाजपा शासित राज्यों के मुख्यमंत्रियों की बैठक बुलानी चाहिए और कोई ऐसा फॉर्मूला तलाशना चाहिए जो व्यावहारिक हो. केवल विपक्ष को नज़रंदाज़ करने की कोशिश से (जैसा महाराष्ट्र में या खुद उनके सहयोगी शिव सेना के साथ हो रहा है) कोई नतीजा नहीं निकलेगा. यदि विरोध प्रदर्शन जारी रहता है, तो पुणे और मुम्बई जैसे शहरों में रहने वाले लोगों की मुश्किलें और बढ़ जाएंगी. आपूर्ति के अभाव में सब्जियों की कीमतें बढ़ जाएंगी. वहीं किसानों को भी नुकसान उठाना पड़ेगा, क्योंकि उनकी उपज सड-गल जाएगी. बेशक सरकार इसके लिए किसानों को जिम्मदार ठहरा सकती है, लेकिन केवल ज़िम्मेदारी मढ़ देने से समस्या का समाधान नहीं हो सकता है. लोगों ने शासन चलाने के लिए सरकार को चुना है. यदि सरकार शासन नहीं चला सकती है, तो यह बहुत दुखद स्थिति है. जितनी जल्दी सरकार कृषि क्षेत्र की समस्याओं की ओर ध्यान देगी, उतना ही बेहतर होगा.

अब अर्थव्यवस्था के सवाल की तरफ लौटते हैं. सत्ताधारी दल की ओर से नोटबंदी की गैरज़रूरी तारीफ की गई, जैसे ये कोई क्रान्तिकारी घटना हो या जैसे इसने अर्थव्यवस्था को ऊंचाइयों तक पहुंचा दिया हो. दरअसल यह एक बेमकसद और गैरज़रूरी फैसला था. इससे कुछ भी हासिल नहीं हुआ, लेकिन विपक्ष और सत्ताधारी दोनों इसे चरम पर ले गए. विपक्ष कह रहा था कि अर्थव्यवस्था तबाह हो गई, ये हो गया, वो हो गया. लेकिन सच्चाई यह है कि सरकार के सारे आकलन (मुझे नहीं मालूम कि किसने ये आकलन किए थे) गलत साबित हुए. अर्थव्यवस्था में उतना काला धन नहीं था, जितनी बात की जा रही थी. प्रचलन में जितना पैसा था, सब वापस आ गया. वित्त मंत्री को ये आंकड़े जारी करने में शर्म आ रही है. लेकिन ज़ाहिर है कि नोटबंदी के तीन लक्ष्य जिनका ज़िक्र प्रधानमंत्री ने किया था, उन्हें हासिल नहीं किया जा सका. ये लक्ष्य थे काला धन, नकली नोट और आतंकवाद, लेकिन इन तीनों पर नोटबंदी का कोई खास असर नहीं दिखा. कहने का मतलब यह है कि यह एक ऐसा क़दम था, जिसे नहीं उठाया जाना चाहिए था. लेकिन ऐसे फैसलों के राजनैतिक प्रभाव भी होते हैं. प्रधानमंत्री सोचते हैं कि नोटबंदी के कारण वे उत्तर प्रदेश चुनाव जीत गए. मुझे नहीं लगता है कि ऐसा हुआ है और यदि ऐसा हुआ भी तो सत्ताधारी दल ने एक राज्य का चुनाव जीतने के लिए देश से बड़ी कीमत वसूल की. दरअसल पिछले साल की तुलना में इस साल की मौजूदा तिमाही के आंकड़े बताते हैं कि जीडीपी नीचे गया है. पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, जो एक अर्थशास्त्री हैं, स्वाभाविक रूप से उन्हें इन चीज़ों की समझ है. उन्होंने कांग्रेस वर्किंग कमिटी को बताया था कि देश की अर्थव्यवस्था ख़राब हालत में है और विकास में ठहराव आ गया है. सरकार अर्थव्यवस्था को लेकर क्या सोच रही है, हमें नहीं मालूम. अरविन्द सुब्रमण्यम एक योग्य आर्थिक सलाहकार हैं. यदि सरकार उनकी सुनेगी, तो उसका प्रदर्शन बेहतर होगा और आने वाले वर्षों में उसके सकारात्मक नतीजे मिलेंगे.

तीसरा मुद्दा राजनैतिक हालात का है. योगी आदित्यनाथ के पास एक बड़ी ज़िम्मेदारी है. उत्तर प्रदेश की शासन व्यवस्था संभालना एक कठिन काम है, क्योंकि शासन की दृष्टि से उत्तर प्रदेश एक मुश्किल राज्य है. अभी तक योगी कानून व्यवस्था को नियंत्रित करने में असफल रहे हैं. वे ठाकुर बिरादरी से आते हैं, इसलिए उनके सत्ता में आने से उच्च जातियों का हौसला बढ़ा है. ये जातियां दलितों को सबक सिखाना चाहती हैं. दरअसल ये कोई आदर्श स्थिति नहीं है. सहारनपुर में जो हुआ, वो उत्तर प्रदेश के किसी भी शहर में हो सकता है. राज्य के नए डीजीपी एक सक्षम प्रशासक हैं. उनके साथ पिछली सरकार में अन्याय हुआ था, लिहाज़ा उसे सुधारा गया है. लेकिन वे भी क्या कर सकते हैं. पूरा तंत्र, जिसमें पुलिस और प्रशासकीय तंत्र शामिल है, इतना ढीला पड़ चुका है कि एक योग्य व्यक्ति भी काम नहीं कर सकता. पूरा पुलिस तंत्र (थाना स्तर तक) जातिवाद से ग्रसित है. लिहाज़ा उच्च जातियों और दलितों के बीच किसी भी झगड़े के दौरान पुलिस भी बंट जाती है. इससे पहले कि उत्तर प्रदेश में हालात इतने ख़राब हो जाएं कि सरकार चलानी मुश्किल हो जाए, योगी को हर पक्ष के समझदार व्यक्तियों की एक बैठक बुलानी चाहिए और हालत को काबू में करने की कोशिश करनी चाहिए.

बदकिस्मती से हम ऐसी दिशा में बढ़ रहे हैं, जिससे देश की शासन व्यवस्था बिगड़ जाएगी और अर्थव्यवस्था बेकाबू हो जाएगी. आम चुनाव में अभी दो वर्ष बाक़ी है. श्री मोदी को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए. यदि अगला चुनाव जीतने के लिए देश को और अधिक नुकसान पहुंचाया जाता है, तो फिर कुछ भी नहीं किया जा सकता है. अगला चुनाव वैसे भी मोदी के पक्ष में जा सकता है, क्योंकि विपक्ष कमज़ोर है. लिहाज़ा उन्हें महज़ चुनाव जीतने के लिए देश को नुकसान पहुंचाने की ज़रूरत नहीं है. वे देश को और अधिक नुकसान पहुंचाए बिना भी चुनाव जीत सकते हैं. महज़ इनोवेटिव होना और वो काम करना जो कारगर साबित नहीं हो सकते, उससे देश को दीर्घकालीन नुकसान हो सकता है. मान लिया कि वे एक और चुनाव जीत जाते हैं, तो उससे क्या होगा. 1970 के दशक में श्रीमती गांधी गरीबी हटाओ और बांग्लादेश युद्ध के बाद चुनाव जीतकर सत्ता में आई थीं, लेकिन तीन साल में ही अर्थव्यवस्था ऐसी स्थिति में पहुंच गई कि सत्ता में बने रहने के लिए उन्हें आपातकाल लागू करना पड़ा. इतिहास से सबक सीखते हुए सरकार को अपने पास ऐसे थिंक टैंक रखने चाहिए, जो 30-40 वर्ष की राजनीति का अध्ययन कर सरकार को सही सलाह दे सकें. ■

feedback@chauthiduniya.com

टीवी चैनल कश्मीर की स्थिति बिगाड़ रहे हैं

शुजात बुख़ारी

वर्ष 2015 में एक तस्वीर सोशल मीडिया पर वायरल हुई थी. उस तस्वीर में 11 सुन्दर और मज़बूत कश्मीरी नौजवान एके-47 राइफल के साथ नज़र आ रहे हैं. तस्वीर के बीच में बुरहान वानी है, जो उस ग्रुप की प्रेरणा है. उसने कश्मीर में मिलिटेंसी के स्वरूप को बदल दिया और भारत-विरोधी आन्दोलन को पुनः जागृत कर दिया. वर्ष 2016 में जब बुरहान मारा गया तो कश्मीर में एक अभूतपूर्व अशांति का दौर शुरू हुआ था. इसने लगभग छह महीने तक कश्मीर को ठप कर दिया था. इस आंदोलन में करीब 100 लोग मारे गए थे, जिनमें अधिकतर युवा थे. हजारों घायल हुए और पैलेट गन के छर्रों से दर्जनों लोग अंधे हुए थे. यह एक नया कश्मीर था, हालांकि एक अंतर के साथ. इस बार लोगों ने अपनी भावनाओं को नहीं छिपाया और मिलिटेंट्स के पीछे खड़े दिखे.

ज़ाहिर तौर पर बुरहान की मौत ने हिज्बुल मुजाहिदीन को हतोत्साहित नहीं किया. हिज्बुल मुजाहिदीन एक स्थानीय मिलिटेंट संगठन है जिसने एक दशक के बाद वापसी की थी. बुरहान के इर्द-गिर्द जमा होने वाले समूह ने हिज्बुल को फिर जिंदा कर दिया, जो पहले अपने कैडर्स के नुकसान और पाकिस्तान द्वारा विदेशियों के वर्चस्व वाले संगठनों को प्राथमिकता दिए जाने से प्रभावित हुआ था. स्थानीय लोगों के संगठन में शामिल होने की वजह से उसे लोगों का अधिक समर्थन मिल रहा है. अक्टूबर 2015 में प्रशासन अचंभित रह गया था, जब कश्मीर में लश्कर-ए-तैयबा का नेतृत्व करने वाले अबु कसीम के अंतिम संस्कार में 30,000 लोग शामिल हुए थे. अबू कासिम पाकिस्तान का रहने वाला था.

इन 11 युवाओं में से 10 मारे जा चुके हैं. इन्होंने जम्मू-कश्मीर, खास तौर पर दक्षिण कश्मीर, में मिलिटेंसी को गति दी और अन्य युवाओं को इस ओर आकर्षित किया. इस ग्रुप के मारे जाने वाले युवाओं में बुरहान के करीबी सब्जार अहमद भट का नवां नंबर था. सब्जार सुरक्षा बलों की ज्यादतियों की वजह से इस रास्ते पर गया था. वर्ष 2015 में त्राल के जंगलों में सेना के हाथों बुरहान के भाई खालिद के मारे जाने की घटना ने उसे संगठन में शामिल होने के लिए प्रेरित किया था. खालिद मिलिटेंट नहीं था, वो संभवतः अपने भाई से मिलने गया था.

बुरहान की जगह लेने से सब्जार ने मना कर दिया और जाकिर मूसा के लिए रास्ता साफ कर दिया. मूसा ने हाल में एक विवादास्पद बयान दिया, जिसमें उसने कहा कि कश्मीर समस्या पर बातचीत के लिए उसका ग्रुप हुर्रियत नेताओं को फांसी पर चढ़ा देगा, यदि बातचीत धर्म पर आधारित नहीं होगी. आम कश्मीरी लोग इस बयान से आक्रोशित हो गए और मूसा को अपने शब्दों को संशोधित कर अपने बयान से सैयद अली गिलानी का नाम हटाना पड़ा.

समूह के एक सदस्य तारिक पंडित ने आत्मसमर्पण किया है और केवल सद्दाम पद्दार अभी जीवित है. 32 वर्षीय सद्दाम ही बुरहान के कोर ग्रुप का अकेला सर्वाइवर (जीवित व्यक्ति) है. अधिकतर नए रंगरूटों की तरह हथियारों के प्रशिक्षण के लिए वह पाकिस्तान नहीं गया था. आतंकवाद में शामिल होने से पहले पत्थर फेंकने के आरोप उस पर लग चुके हैं. वह शोपियान जिले से है. उसे घाटी में हिज्ब के नए संभावित प्रमुख के रूप में देखा जा रहा है क्योंकि जाकिर मूसा का आगे क्या होगा, किसी को नहीं पता. इसकी वजह यह है कि हिज्बुल मुजाहिदीन, जिसे पाकिस्तान में बैठ इसका सर्वोच्च कमांडर सलाहुद्दीन चला रहा है, ने भी खुद को जाकिर के विचारों से अलग कर लिया है.

इस तथ्य के बावजूद कि 2016 और 2017 में हिज्ब को दो बड़े नुकसान हुए, फिर भी इसके पास अब भी सबसे ज्यादा आतंकवादी हैं. अकेले दक्षिण कश्मीर में, सरकारी सूत्रों के मुताबिक 112 आतंकवादी हैं और उनमें से 99 स्थानीय हैं. आतंकवादियों की सबसे बड़ी ढाल वे लोग हैं, जो उन्हें शरण, भोजन और यहां तक कि बचने में भी मदद करते हैं. एक दशक पहले आतंकवादियों के लिए स्थानीय समर्थन कम हो गया था और इसी वजह से उनकी संख्या काफी कम हो गई थी. आज उनको लोगों का मौन समर्थन हासिल है. ऑपरेशन के दौरान लोग सुरक्षा बलों पर पत्थर फेंकते हैं और उनके अंतिम संस्कार में बड़ी संख्या में घरों से बाहर निकलते हैं. आतंकवादियों की हत्या के खिलाफ लोग शटरडाउन करते है. संयुक्त हुर्रियत के लिए लोगों के क्रोध को संभालना मुश्किल हो रहा है.

आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार, आज कश्मीर में 282 आतंकवादी सक्रिय हैं. 1990 के दशक के मध्य में आतंकवाद अपनी जड़ें कितनी गहराई तक जमा चुका था, उससे तुलना करें तो किसी को भी यह देखकर आश्चर्य हो सकता है कि आज ऐसा क्या हुआ, जो सशस्त्र प्रतिरोध इतना ताकतवर बन गया है कि इसने नई दिल्ली की सुरक्षा प्रतिष्ठान का पूरा ध्यान अपनी तरफ खींच लिया है. नए युग के आतंकवाद के चारों तरफ आज एक हिस्टीरिया सा माहौल बना हुआ है, जिसमें सुरक्षा प्रतिष्ठान और राष्ट्रीय मीडिया (ज्यादातर टीवी चैनल) अपने उत्तेजित दृष्टिकोण के साथ दिखते रहे हैं. मिसाल के तौर पर, सेनाध्यक्ष जनरल बिपिन रावत का एक कश्मीरी व्यक्ति का मानव ढाल के तौर पर इस्तेमाल किए जाने की घटना का बचाव करना और कश्मीर की स्थिति का वर्णन एक डर्टी वार के रूप में करना, को देखना चाहिए. यह राज्य की कठिन हालात से निपटने की क्षमता पर सवाल उठाता है. यह भी कि जब 90 के दशक में इतना शोर-शराबा नहीं था, तब कैसे इस मामले को संभाला गया था? इसमें कोई संदेह नहीं है, जनता के समर्थन की तस्वीर अब बदल गई है. यह एक युद्ध है, जो कश्मीर पर जबरदस्ती थोपा जा रहा है. रक्षा मंत्री अरुण जेटली ने हाल में कहा कि यह कश्मीर में युद्ध जैसी स्थिति थी और रावत ने भी आतंकवादियों के समान ही पत्थर फेंकने वालों से निपटने की बात की.

आधिकारिक आंकड़ों के मुताबिक, 1995 में करीब 4390 आतंकियों को गिरफ्तार किया गया था और 1332 मारे गए थे. 1996 में लगभग 3453 आतंकियों को गिरफ्तार किया गया और 1332 मारे गए. 2001 में सबसे बड़ी संख्या में 2421 आतंकी मारे गए और इसके साथ ही आतंकवाद में कमी आने लगी थी. 9/11 ने कश्मीर विद्रोह के बारे में दुनिया का विचार बदल दिया था. पाकिस्तान, अफगानिस्तान के मोर्चे पर लग गया था.

ऐसा प्रतीत होता है कि कश्मीर आतंकवाद के हाथों हार रहा है और इसे किसी तरह खत्म करना है. यह तस्वीर 1996 से काफी अलग है. महबूबा मुफ्ती द्वारा संसद में 8 अगस्त 2014 को एक सवाल पूछ गया था और उसका अजीबोगरीब जवाब मिला. मुफ्ती ने संसद सदस्य के नाते 8 अगस्त 2014 को पूछा था कि क्या जम्मू और कश्मीर में सक्रिय आतंकियों की संख्या 1995 से कम हुई है और क्या सरकार का कश्मीर के नागरिक क्षेत्रों से सुरक्षा बलों को वापस हटाने का कोई प्रस्ताव है? जवाब में गृह मंत्रालय ने कहा कि 1995 के मुकाबले जम्मू और कश्मीर में सक्रिय आतंकियों की संख्या में काफी कमी आई है. 1996 में राज्य में करीब 6800 सक्रिय आतंकवादी थे. वर्ष 2013 और 2014, जनवरी में क्रमशः 240 और 199 के बीच रह गए हैं. हालांकि, एक पूर्व आतंकवादी कमांडर का कहना है कि 1995-96 में सक्रिय आतंकवादियों की संख्या 8 हजार से दस हजार तक हो सकती है.

आधिकारिक आंकड़ों के मुताबिक, 1995 में करीब 4390 आतंकियों को गिरफ्तार किया गया था और 1332 मारे गए थे. 1996 में लगभग 3453 आतंकियों को गिरफ्तार किया गया और 1332 मारे गए. 2001 में सबसे बड़ी संख्या में 2421 आतंकी मारे गए और इसके साथ ही आतंकवाद में कमी आने लगी थी. 9/11 ने कश्मीर विद्रोह के बारे में दुनिया का विचार बदल दिया था. पाकिस्तान, अफगानिस्तान के मोर्चे पर लग गया था. इस दौरान घुसपैठ में भी कमी आ गई थी. सेना ने 2015 को शून्य घुसपैठ का वर्ष बताया.

जनता से मिलने वाले समर्थन के अलावा, आज के आतंकवादी उन लोगों की तुलना में अधिक प्रतिबद्ध हैं, जो 1990 में आतंकवादी गतिविधियों में शामिल हुए थे, जब आतंक के सभी रास्ते रावलपिंडी की ओर जाते थे. ज्यादातर मामलों में, आतंकवादी पहले स्टोन पेल्टर का काम कर चुके होते हैं. लोग स्टोन पेल्टर इसलिए भी बने, क्योंकि बड़े मुद्दों को हल करने के लिए कोई राजनीतिक प्रक्रिया नहीं अपनाई गई. एक राजनैतिक शून्यता की स्थिति रही और जिस तरह से पुलिस उनके पीछे पड़ती है, उससे वे अंततः आतंकवादियों की रैंक में आ जाते हैं.

एक बड़े प्रतीकात्मक नुकसान के साथ, हिज्ब के लिए आगे बढ़ना मुश्किल हो सकता है. हालांकि उसके पास संख्या ठीक-ठाक है. तथ्य यह है कि जब तक लोग इनके पीछे रैली करते रहेंगे, यह राज्य में असहज माहौल बनाए रखेगा. शोपिया में सेना द्वारा इन्हें रोकने के दो प्रयासों का उलटा नजीता निकला. दक्षिण कश्मीर का आतंकवाद की राजधानी बनना, कई जटिल वास्तविकताओं का नतीजा है. इनमें से एक है लोगों को राजनीतिक मोर्चे पर असहाय बना देना. लेकिन दक्षिण कश्मीर भी खबरों में है, क्योंकि आतंकियों ने स्वयं को सोशल मीडिया के माध्यम से सार्वजनिक किया है. बुरहान एक पोस्टर ब्वॉय बन गया था. एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने उसकी हत्या के तुरंत बाद लिखा था कि उसने आज तक एक भी गोली नहीं चलाई थी. दक्षिण की तुलना में उत्तर में ज्यादा गड़बड़ी है. पुलिस के अनुसार यहां 141 सक्रिय आतंकवादी हैं, जिसमें 118 विदेशी और 23 स्थानीय हैं. हालांकि, वे सोशल मीडिया से दूर रहते हैं और अपनी मौजूदगी के बारे में प्रचार नहीं करते हैं. यही दक्षिण और उत्तर कश्मीर के आतंकियों के बीच अंतर है.

ये कहना बड़ा मुश्किल है कि मौजूदा स्थिति को समाप्त करने के लिए क्या सरकार ताकत का इस्तेमाल कर सकती है. लेकिन किसी भी सरकारी एक्शन के मुकाबले टीवी चैनलों पर युद्ध का माहौल बना हुआ है, जो वस्तुस्थिति को और अधिक नुकसान पहुंचा रहा है. ■

-लेखक राइजिंग कश्मीर के संपादक हैं.

feedback@chauthiduniya.com

संतोष भारतीय

जब तोप मुक़ाबिल हो

मुख्यमंत्री के सुसाइड नोट को ग़ायब क्यों किया गया

सिस्टम कितना बेरहम होता है. वो अपने ही व्यक्ति की मौत का सुख उठाता है. हमारे इस महान देश के एक मुख्यमंत्री आत्महत्या करते हैं. आत्महत्या करने से पहले वे एक विस्तृत आत्महत्या स्वीकृति पत्र लिखते हैं, जिसे सुसाइड नोट कहा जाता है. उनके उस नोट के ऊपर कहीं कोई बातचीत नहीं होती, कोई उसकी छानबीन नहीं करता. अचानक वो नोट गायब हो जाता है. नेशनल लॉयर्स कैंपेन फॉर ज्यूडिशियल ट्रांसपेरेंसी और अन्य 10 लोगों ने इस मामले में सुप्रीम कोर्ट में पीआईएल दाखिल किया. लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने इस पीआईएल को जिस तरह खारिज किया, वो भी एक विस्मयकारी चीज है. सरकार, केंद्र सरकार खामोश हो जाती है और इतनी खामोश हो जाती है कि सांस तक नहीं लेती.

आत्महत्या करने वाले इन मुख्यमंत्री महोदय की पत्नी चुनाव लड़कर भारतीय जनता पार्टी की विधायक बन जाती हैं. शायद इसलिए क्योंकि उन्होंने इस आत्महत्या वाले पत्र पर खामोश रहने का किसी को वचन दे दिया. उन्होंने कोई मांग नहीं उठाई. आखिर क्या था इस पत्र में? क्यों ये गायब हो गया? लोगों के पास सिर्फ इतनी जानकारी आई की ये 60 पृष्ठ का दस्तावेज है. इस दस्तावेज में क्या है, न अरुणाचल सरकार ने बताया जहां के मुख्यमंत्री थे और न केंद्र सरकार ने बताया. सुप्रीम कोर्ट पूरी तरह खामोश हो गया. कोई जांच नहीं, कोई सुगबुगाहट नहीं, कोई सनसनाहट नहीं.

इसे हम क्या मानें? हमने जब तलाश की और खोजबीन की, तो हमें पता चला कि इस पत्र में कुछ मंत्रियों के नाम हैं. कुछ रहे हुए मंत्रियों के नाम हैं. इस पत्र में कुछ माननीय जजों के नाम हैं, राजनीतिक दलों के कुछ महान नेताओं के नाम हैं. जिनके बारे में आत्महत्या करने वाले मुख्यमंत्री श्री कलिखो पुल ने साफ-साफ लिखा है. उन्होंने ये भी लिखा है कि उन्होंने किसे पैसे कहां दिए. जब हम पैसे कहते हैं, तो वो लाखों में नहीं होते हैं, वो करोड़ों में होते हैं. आखिर किन जज साहबानों को उन्होंने पैसे दिए. क्या ये सारा मसला इसलिए दबा दिया गया, क्योंकि इससे हमारे सिस्टम के सबसे भरोसे वाले अंग न्यायपालिका, न्यायपालिका की गंदगी का, न्यायपालिका के भीतर चल रहे भ्रष्टाचार का खुलासा होता है. राजनीतिज्ञ धन लें समझ में आता है, लेकिन न्यायपालिका में शीर्ष पदों पर बैठे हुए लोग अगर धन लें और उसके आधार पर फैसला करें, ये बात कुछ समझ में नहीं आती और इससे ये लगता है कि जानबूझ कर हमारे लोकतंत्र को समाप्त करने की साजिश उसी के सहारे अपना जीवन गुजारने वाले कर रहे हैं.

अपनी जांच में हमें ये भी पता चला कि किस तरह केंद्र सरकार द्वारा भेजा हुआ 100 रुपया राज्य में पहुंचते-पहुंचते 25 पैसे हो जाता है. पीडीएस स्कीम सिर्फ और सिर्फ घोटालों का, खाने का और भ्रष्टाचार का तरीका बन गया है. एक पूरे तंत्र को तबाह करने की मंत्रियों की, विधायकों की, नौकरशाहों की मिलीभगत का खुला चिट्ठा श्री कलिखो पुल के आखिरी पत्र में है.

अगर श्री कलिखो पुल कहते हैं कि उन्होंने लोगों को पैसे दिए, तो ये पैसे आए कहां से. इसका मतलब वे भी सिस्टम का हिस्सा थे. लेकिन वे सिस्टम से लड़ते-लड़ते इतने हताश हो गए कि अंत में उन्होंने आत्महत्या करना श्रेयस्कर समझा. लेकिन आत्महत्या से पहले उन्होंने एक लम्बा पत्र लिखा. ये पत्र बताता है कि भ्रष्टाचार कैसे तंत्र में घुन की तरह घुस गया है और कैसे वे लोग ही भ्रष्टाचार के संवाहक और कंडक्टर बन गए हैं जिनके ऊपर भ्रष्टाचार को खत्म करने का जिम्मा था, चाहे वो राजनीति में हों या न्यायापालिका में हों.

मैं अगर मिली जानकारी को संक्षेप में कहूं, तो मुझे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के ऊपर भी थोड़ा तरस आता है, थोड़ा गुस्सा आता है. क्यों प्रधानमंत्री जी ने इस पत्र की जांच का आदेश नहीं दिया? एक तरफ प्रधानमंत्री जी सभाओं में भ्रष्टाचार के खिलाफ गरजते हैं, समाप्त करने की बात करते हैं. इसमें कोई दो राय नहीं कि व्यक्तिगत रूप से नरेंद्र मोदी निष्कलंक व्यक्ति हैं. लेकिन नरेंद्र मोदी सिस्टम में व्याप्त भ्रष्टाचार को क्यों नहीं खोलना चाहते हैं, क्यों नहीं सार्वजनिक करना चाहते हैं? प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी की कौन सी कमजोर नस है, जो उन्हें ऐसा करने से रोक रही है या उनकी कोई रणनीति है कि बड़े भ्रष्टाचार को और खासकर मुख्यमंत्री की आत्महत्या के पत्र को चुनाव से ठीक पहले जांच के दायरे में लाया जाए? लेकिन तब तक तो देश में और बहुत कुछ हो जाएगा. भ्रष्टाचार से लड़ने का वक्त तभी होता है, जब आप भ्रष्टाचार से लड़ने की बात करते हैं.

> **मैं अगर मिली जानकारी को संक्षेप में कहूं, तो मुझे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के ऊपर भी थोड़ा तरस आता है, थोड़ा गुस्सा आता है. क्यों प्रधानमंत्री जी ने इस पत्र की जांच का आदेश नहीं दिया? एक तरफ प्रधानमंत्री जी सभाओं में भ्रष्टाचार के खिलाफ गरजते हैं, समाप्त करने की बात करते हैं. इसमें कोई दो राय नहीं कि व्यक्तिगत रूप से नरेंद्र मोदी निष्कलंक व्यक्ति हैं. लेकिन नरेंद्र मोदी सिस्टम में व्याप्त भ्रष्टाचार को क्यों नहीं खोलना चाहते हैं, क्यों नहीं सार्वजनिक करना चाहते हैं? प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी की कौन सी कमजोर नस है, जो उन्हें ऐसा करने से रोक रही है या उनकी कोई रणनीति है कि बड़े भ्रष्टाचार को और खासकर मुख्यमंत्री की आत्महत्या के पत्र को चुनाव से ठीक पहले जांच के दायरे में लाया जाए? लेकिन तब तक तो देश में और बहुत कुछ हो जाएगा.**

इसलिए मैं माननीय सुप्रीम कोर्ट, माननीय प्रधानमंत्री और माननीय संसद से ये आग्रह करता हूं कि वो एक व्यक्ति द्वारा मौत से पहले लिखे हुए पत्र को अनदेखा न करें. उसके ऊपर जांच बैठा दें. ये उनके अपने सिस्टम के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति, जो लगातार पांच बार विधायक रह चुका है की आत्महत्या से उपजा सवाल है. मैं ये भी आग्रह करता हूं कि एक सप्ताह के भीतर आप इस जांच को बैठा लें, अन्यथा हम उस पत्र को कहीं न कहीं से प्राप्त कर देश के लोगों के सामने लाएंगे. पत्रकार सिर्फ इतना कर सकता है. अगर एनडीटीवी के ऊपर किसी पुराने मामले में सीबीआई का छापा पड़ सकता है, तो प्रधानमंत्री जी, एक मुख्यमंत्री की आत्महत्या के नोट के ऊपर सीबीआई की जांच क्यों नहीं कराई जा सकती? करानी चाहिए. आप कम से कम भ्रष्टाचार के मसले में पक्षपात नहीं करें, ऐसी अपेक्षा तो आपसे है ही.

आमतौर पर माना जाता है कि मरने से पहले व्यक्ति हमेशा सच बोलता है. आत्महत्या से पहले श्री कलिखो पुल ने एक 60 पन्ने का टाइप्ड नोट लिखा. मेरा ख्याल है कि उस टाइप्ड नोट को लिखने में तीन से चार दिन लगे होंगे. कोई उनके साथ बैठकर उसे टाइप कर रहा होगा. उन्होंने उसे पढ़ा होगा. उसके हर पृष्ठ पर उन्होंने दस्तखत किए, ताकि कोई इस नोट बदल न सके. उन्होंने कहा है कि मेरी आत्महत्या या मेरा जाना मेरे देशवासियों के लिए कम से कम कुछ सीख देगा और वे भ्रष्टाचार के खिलाफ अपनी आवाज उठाएंगे. लेकिन इस सिस्टम ने, सुप्रीम कोर्ट ने, केंद्र सरकार ने या स्वयं संसद ने स्वर्गीय मुख्यमंत्री की इच्छा का सम्मान नहीं किया. कहीं से कोई आवाज भी नहीं उठी कि इस पत्र के ऊपर सीबीआई जांच बैठे और जो तथ्य उन्होंने लिखे हैं, उनकी सच्चाई का पता लगाया जाए.

कहा तो ये जा रहा है कि जिन कुछ लोगों ने इस पत्र की तलाश का काम शुरू किया, उन्हें किसी एक जगह बुलाकर ये कहा गया कि आप पत्रकारिता कीजिए, आप इन सब में कहां पड़े हैं. अगर आप इसमें पड़ेंगे, तो कोई ट्रक आपको कुचल कर चला जाएगा. इसका मतलब भ्रष्टाचार को पनाह देने वाले लोग इतने ताकतवर हैं कि वे किसी भी कीमत पर भ्रष्टाचार की परतें उघड़ते हुए नहीं देखना चाहते. कोई जांच नहीं होने देना चाहते. वे बहुत ताकतवर हैं. इसीलिए आरटीआई के बहुत सारे कार्यकर्ता मारे जा रहे हैं. पत्रकारों के ऊपर दबाव बनाया जा रहा है. हमारे वो चैनल, जो पाकिस्तान के खिलाफ युद्ध का कंट्रोल रूम बने हुए हैं, उनकी हिम्मत चीन के खिलाफ बोलने की तो होती ही नहीं है, उनकी हिम्मत भ्रष्टाचार को उजागर करने की भी नहीं होती है. दरअसल, बहुत सारे लोग इस तंत्र के भ्रष्टाचार का हिस्सा बन गए हैं. मैं अंत में न्यायपालिका और प्रधानमंत्री जी से आग्रह करता हूं कि सात दिन के भीतर आप जांच कमिटी बैठा लें, अन्यथा हम कोशिश करेंगे कि उस स्वर्गीय मुख्यमंत्री के पत्र को हम सार्वजनिक करें और लोगों के संज्ञान में लाएं, जिन्होंने मुख्यमंत्री रहने के बाद भी सिस्टम से हार कर आत्महत्या कर ली. इसे कोई भी धमकी समझने की गलती न करें. ये सलाह है और प्रधानमंत्री जी से अंत में फिर हाथ जोड़कर आग्रह है कि फौरन सीबीआई की जांच का आदेश इस पत्र को लेकर दें और राजनीति और न्यायपालिका में बैठे हुए उन लोगों के चेहरे सार्वजनिक करें, जो भ्रष्टाचार में अपना हिस्सा लेने के लिए बेशर्मी से मुंह खोलते हैं और मुख्यमंत्री से पैसे की मांग करते हैं. वे इस मांग को सहन नहीं कर पाते और इस दुनिया से शांति से विदा हो जाते हैं, ये सोचकर कि उनकी आत्महत्या इस देश के लोगों में आशा का संचार करेगी. लेकिन आत्महत्या करने वाले श्री कलिखो पुल को क्या पता था कि उनकी आत्महत्या का आखिरी दस्तावेज, उनका सुसाइड नोट इस देश के लोगों के पास ही नहीं पहुंच पाएगा. ■

editor@chauthiduniya.com

आर या पार

विकास में गिरावट नोटबंदी के नुक़सानों की पुष्टि

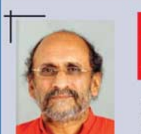

परंजय गुहा ठाकुरता

वित्तिय वर्ष 2016-17 की आखिरी दो तिमाही में आई गिरावट नोटबंदी के नुकसानों की पुष्टि कर रही है. फरवरी 2017 में केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय यानी सीएसओ ने ये घोषणा की कि 2016-17 की तीसरी तिमाही में विकास दर 7 फीसदी और पूरे वित्त वर्ष के लिए विकास दर 7.1 फीसदी रही. उस वक्त प्रधानमंत्री ने नोटबंदी को अर्थव्यवस्था के लिए नुकसानदायक बताने वाले लोगों की आलोचना करते हुए कहा था कि ये हार्वर्ड में पढ़े-लिखे लोग हैं. कई जनसभाओं में प्रधानमंत्री मोदी ने पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की भी आलोचना की, क्योंकि मनमोहन सिंह ने नोटबंदी की वजह से जीडीपी में दो फीसदी कमी की आशंका जाहिर की थी. प्रधानमंत्री मोदी ने अमर्त्य सेन की उस बात को भी खारिज किया, जिसमें उन्होंने कहा था कि नोटबंदी की वजह से अनौपचारिक अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक असर पड़ेगा. मोदी ने कहा कि इन लोगों की झूठ का पर्दाफाश हो गया है. जबकि खुद सरकारी अधिकारी ये कह रहे थे कि संभव है, नोटबंदी का पूरा असर अभी नहीं दिख रहा हो. सीएसओ ने 31 मई को जो आंकड़े जारी किए हैं, उनसे पता चलता है कि बीते वित्त वर्ष की आखिरी दो तिमाही में विकास दर में गिरावट आई है. इन आंकड़ों से 'मोदी के झूठ' का भी पर्दाफाश होता है.

> **2011-12 में ये अनुमान लगाया गया था कि देश में कुल 48.4 करोड़ श्रमिक हैं. इनमें से तीन करोड़ ही संगठित क्षेत्र में हैं. इसका मतलब ये हुआ कि 93 फीसदी श्रमिक असंगठित क्षेत्र में हैं. ऐसे में इनकी मांग और बचत में कमी आने से अर्थव्यवस्था में मध्यकालिक तौर पर असर पड़ना तय है. नोटबंदी से अर्थव्यवस्था को और असंगठित क्षेत्र में काम करने वालों को गंभीर नुकसान हुए हैं.**

तीसरी तिमाही में 2015-16 की समान अवधि के मुकाबले 0.6 फीसदी की गिरावट आई और विकास दर 6.7 फीसदी रही. जबकि चौथी तिमाही में ये गिरावट 3.1 फीसदी की है. इस दौरान 2015-16 की समान अवधि के 8.7 फीसदी के मुकाबले विकास दर सिर्फ 5.6 फीसदी रही. 2013-14 में विकास दर 5.6 फीसदी थी और उसकी चौथी तिमाही के बाद इस चौथी तिमाही में, ये अब तक के सबसे निराशाजनक आंकड़े हैं. लेकिन अगर 2013-14 के आंकड़ों की गणना नए आधार वर्ष यानी 2011-12 के अनुसार हो, तो ये पता चलेगा कि उस साल की चौथी तिमाही की विकास दर 2016-17 की चौथी तिमाही से अधिक है. इसका मतलब ये हुआ कि जब से नया आधार वर्ष शुरू हुआ है, तब से ये अब तक का सबसे बुरा प्रदर्शन है. 2016-17 का जीवीए भी इसके पिछले साल के मुकाबले 1.3 फीसदी कम होकर 6.6 फीसदी पर रहा. ये भी 2012-13 के बाद सबसे कम है. चालू वर्ष का जीडीपी 7.1 फीसदी इसलिए रहा, क्योंकि इसमें अप्रत्यक्ष करों के 12.8 फीसदी के योगदान को भी जोड़ लिया गया है. जबकि पुराने गणना पद्धति में ये शामिल नहीं था.

सीएसओ के आंकड़े ये भी बताते हैं कि निवेश में कमी आई है. इसे मापने के लिए ग्रॉस फिक्स्ड कैपिटल फॉर्मेशन यानी जीएसीएफ का इस्तेमाल किया जाता है. 2016-17 में यह बीते वित्त वर्ष के 30.9 फीसदी के मुकाबले घटकर 29.5 फीसदी रहा, जबकि चौथी तिमाही में ये बीते साल की चौथी तिमाही के 28.5 फीसदी के मुकाबले 25.5 फीसदी ही रहा. जाहिर है कि इसका असर मध्यकालिक तौर पर उत्पादन, रोजगार और आमदनी पर पड़ेगा.

कृषि और लोक प्रशासन को छोड़कर सभी श्रेणियों में चौथी तिमाही में तेज गिरावट दिखी है. इन दोनों को छोड़कर बाकी छह क्षेत्रों की विकास दर 10.7 फीसदी से घटकर 3.8 फीसदी रही है. इसका मतलब ये हुआ कि जीडीपी को 1,35,600 करोड़ रुपए का नुकसान हुआ है. कंस्ट्रक्शन क्षेत्र में 2015-16 की चौथी तिमाही में छह फीसदी की तेजी दर्ज की गई थी, जबकि इस बार चौथी तिमाही में इसमें 3.7 फीसदी की कमी आई है. अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले सबसे अधिक लोग इसी क्षेत्र में काम करते हैं. विनिर्माण, व्यापार, होटल, परिवहन, वित्तीय सेवाएं, रियल एस्टेट और पेशेवर सेवाओं में भी गिरावट आई है. ये सभी ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें अच्छी खासी संख्या में अनौपचारिक रोजगार करने वाले हैं.

ये तर्क दिया जा सकता है कि आखिरी दो तिमाही के आंकड़े तात्कालिक हैं और मध्यकालिक तौर पर इसका असर नहीं दिखेगा. भारतीय अर्थव्यवस्था में अनौपचारिक क्षेत्र की भूमिका को देखते हुए कहा जा सकता है कि जीडीपी की गणना में सीएसओ जिस तरह से इस क्षेत्र के योगदान की गणना करता है, उसमें खोट है. अभी श्रम को एक इनपुट मानकर विनिर्माण और सेवा क्षेत्र में अनौपचारिक रोजगार के योगदान की गणना की जाती है. इसमें जिन आंकड़ों की जरूरत पड़ती है, वे सिर्फ आधार वर्ष के लिए ही उपलब्ध हैं और बाकी के सालों में इसे आधार बनाकर गणना कर दी जाती है. इस वजह से अनौपचारिक रोजगार और श्रमिकों की आमदनी पर नोटबंदी के सही असर का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता है. दूसरी तरफ, जमीनी स्तर से आने वाले रिपोर्ट ये बता रहे हैं कि नोटबंदी की वजह से अनौपचारिक अर्थव्यवस्था दबाव में है. लोगों की नौकरियां गई हैं और आमदनी कम हुई है. साथ ही स्वरोजगार में भी कमी आई है.

2011-12 में ये अनुमान लगाया गया था कि देश में कुल 48.4 करोड़ श्रमिक हैं. इनमें से तीन करोड़ ही संगठित क्षेत्र में हैं. इसका मतलब ये हुआ कि 93 फीसदी श्रमिक असंगठित क्षेत्र में हैं. ऐसे में इनकी मांग और बचत में कमी आने से अर्थव्यवस्था में मध्यकालिक तौर पर असर पड़ना तय है. नोटबंदी से अर्थव्यवस्था को और असंगठित क्षेत्र में काम करने वालों को गंभीर नुकसान हुए हैं. हालिया आंकड़े मोदी सरकार के भ्रामक नारेबाजी और खोखले वादों की पोल खोलने वाले हैं. ■

(लेखक इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली के संपादक हैं.)

feedback@chauthiduniya.com

केंद्र सरकार के तीन साल पूरे, फिर भी सांसद आदर्श ग्राम अधूरे

कोई झांकने तक नहीं आया

यूपी के सांसद आदर्श ग्राम : कुछ भी आदर्श नहीं

संतोष देव गिरि/भिखारी सिंह डुमरी

कहते हैं देश की खुशहाली का रास्ता गांवों से होकर गुजरता है. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने लालकिले की प्राचीर से सांसद आदर्श ग्राम योजना का ऐलान किया था और पुरजोर प्रचार किया था कि यह महत्वाकांक्षी योजना भारत में ग्राम विकास का नया मॉडल लेकर सामने आएगी. प्रधानमंत्री ने कहा था कि हर एक सांसद प्रतिवर्ष अपने संसदीय क्षेत्र के एक गांव को गोद ले और उसे विकसित करने का काम करे. खुद प्रधानमंत्री ने अपने संसदीय क्षेत्र वाराणसी के जयापुर गांव को गोद लिया था. सांसद आदर्श ग्राम के तहत अन्य सांसदों ने भी अपने-अपने संसदीय क्षेत्र के गांवों को गोद लिया था. तब लोगों को उम्मीद जगी थी कि कुछ गांवों के तो भाग्य फिरेंगे! लेकिन उन उम्मीदों पर ही पानी फिर गया. सत्ता और विपक्ष दोनों तरफ के सांसद योजना से जुड़ी विसंगतियों और व्यावहारिक रुकावटों को रेखांकित करते हैं. सांसदों का कहना है कि आदर्श ग्राम योजना को लेकर अलग से कोई धन का प्रावधान नहीं किया गया. सांसदों से ही अपेक्षा की गई कि वे अपने संसदीय क्षेत्र विकास निधि का उपयोग करें. सरकार कहती है सांसदों को निधि क्यों मिलती है! सांसदों को निधि विकास के लिए ही मिलती है, फिर अलग से और धन की आकांक्षा का क्या मतलब है! सरकार का भी कहना जायज है. सांसद निधि में भीषण कमीशनखोरी का पुराना स्वाद सांसद भूल नहीं पा रहे. इस वजह से सांसद आदर्श ग्राम योजना को सांसद ही फेल साबित करने पर लगे हैं.

पीएम का गोद लिया गांव, विकास के थोड़े-बहुत पड़े पांव

26 मई 2017 को केंद्र सरकार के तीन साल पूरे हो गए. सरकार चौथे वर्ष के कार्यकाल में प्रवेश कर चुकी है. केंद्र सरकार के तीन साल पूरे होने के बाद 'चौथी दुनिया' ने उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के कुछ जनपदों में 'सांसद आदर्श गांव' का सच जानने का प्रयास किया. विकास के कुछ काम छोड़ कर गांवों की वही रोनी सूरत, उपेक्षा और बदहाली नजर आई. आश्चर्य की बात यह है कि पूर्वांचल से केंद्र सरकार में तीन मंत्री हैं, बावजूद इसके इनके द्वारा गोद लिए हुए गांवों में दूर से ही बदहाली पसरी हुई दिखती है. सांसदों के दावे चाहे जो भी हों, लेकिन जमीनी हकीकत कुछ और है. सांसदों द्वारा गोद लिए हुए गांवों में ग्रामीणों की दशा जैसी कल थी वैसी ही आज है. सवाल है कि आखिर विकास किसका हुआ और सांसद आदर्श गांव का क्या औचित्य रह गया?

अन्य गांवों की तो बात ही छोड़ दें, प्रधानमंत्री के संसदीय क्षेत्र में उनके द्वारा गोद लिए हुए गांव जयापुर और नागेपुर का हाल भी फटेहाल है. चौथे वर्ष में सांसदों को चौथा गांव गोद लेना चाहिए था. लेकिन पहले गोद लिए हुए गांव का ही विकास नहीं हुआ, तो दूसरे गांव को गोद लेने का क्या मतलब! अंदाजा लगाया जा सकता है कि सांसद आदर्श ग्राम के तहत प्रतिवर्ष एक गांव को गोद लेकर उसका समुचित विकास करने के प्रति हमारे सांसद कितने संजीदा हैं और केंद्र सरकार कितनी सजग है.

पूर्वांचल के सांसदों द्वारा गोद लिए हुए कई आदर्श गांवों में विकास की किरण तक नहीं पहुंच पाई है. गांव के लोग आज भी बुनियादी सुविधाओं के लिए तरस रहे हैं. अधिकांश बस्तियों में पहुंचने के लिए सुलभ मार्ग का अभाव बना हुआ है. इस भीषण गर्मी में ग्रामीणों के समक्ष पेयजल का संकट कायम है. समय-समय पर अपने गोद लिए गांवों के विकास के लिए सांसदों की पहल पर अधिकारी जगते भी हैं, तो यह दिखावटी ही होता है. सारा विकास कागज पर हो जाता है. ग्रामीणों का कहना है कि प्रधानमंत्री को खुद आकर गांवों का हाल देखना चाहिए, ताकि सच का पर्दाफाश हो सके.

प्रधानमंत्री के संसदीय क्षेत्र के तहत सेवापुरी विधानसभा का जयापुर और नागेपुर गांव प्रधानमंत्री द्वारा गोद लेने के कारण सुर्खियों में आया था. इलाहाबाद-वाराणसी नेशनल हाइवे पर स्थित इस गांव में विकास के कदम तो जरूर उतरे, पर बहक गए. जयापुर गांव में विकास का कुछ काम हुआ भी, लेकिन नागेपुर की तो हालत और खराब ही हो गई. सेवापुरी विधानसभा क्षेत्र से चुने गए अपना दल (एस) के विधायक और अपना दल विधान मंडल दल के नेता नीलरतन पटेल नीलू कहते हैं कि यह उनका सौभाग्य है कि उनका विधानसभा क्षेत्र प्रधानमंत्री के संसदीय क्षेत्र में आता है. साथ ही प्रधानमंत्री द्वारा गोद लिए हुए दोनों गांव भी उनके विधानसभा क्षेत्र में आते हैं. इसके बावजूद इन गांवों का विकास क्यों नहीं हुआ? इस पर पटेल राजनीतिक बयान देते हैं, कहते हैं कि किसी भी भेदभाव और दलगत भावना से उठकर गांव का विकास करना होगा. जो कार्य अधूरे हैं, उन्हें सर्वप्रथम पूरा किया जाएगा. जहां कोई काम ही नहीं हुआ है, उन्हें प्राथमिकता के आधार पर शुरू किया जाएगा. केंद्र सरकार के तीन साल बाद नेता के ये बोल कितने मोल के हैं, यह समझा जा सकता है.

ददरी गांव में अनुप्रिया का दांव, मस्त का गांव पस्त

मीरजापुर की सांसद अनुप्रिया पटेल केंद्रीय परिवार कल्याण राज्यमंत्री हैं. उन्होंने जिले के अति पिछड़े पहाड़ी क्षेत्र हलिया विकास खंड के ददरी गांव को गोद लिया था. उस समयगांव में गाजे-बाजे के साथ सांसद का स्वागत किया गया था. तब विकास का लम्बा चौड़ा खाका खींचा गया था. बाहर की टीम भी आकर इस गांव का निरीक्षण कर गई थी. बड़ा भौकाल खड़ा किया गया था. लोगों को लगा था कि इस गांव का तो कायाकल्प ही हो जाएगा. लेकिन ददरीगांव आज भी वैसा ही बदहाल है. गांव के लोगों को पेयजल, बिजली, नाली, सड़क के लिए अभी भी तरसना पड़ रहा है. गांव के विकास की योजनाएं फाइलों में दम तोड़ रही हैं. ददरी का विकास तो हुआ नहीं, सांसद ने दूसरे गांव बगही (चुनार विधानसभा के तहत) को भी गोद ले लिया. अब गांव के लोग सांसदों के गोद लेने की बात से ही भागते हैं.

भदोही जिले के सांसद वीरेंद्र सिंह मस्त के गोद लिए गांव कौलापुर की बदहाली भी किसी से छुपी हुई नहीं है. लोग अब सांसद को कोसते नजर आ रहे हैं. जौनपुर शहर के सांसद केपी सिंह ने सुईथाकला विकास खंड के बुढ़ूपुर गांव को और जौनपुर की ही मछलीशहर सीट से सांसद रामचरित्तर निषाद ने धर्मापुर ब्लॉक के आरा गांव को जब गोद लिया था, तब इन गांवों में मिठाइयां बंटी थीं, पटाखे दागे गए थे. लेकिन कुछ नहीं हुआ. इन गांवों के लोग आज भी पुराने दिनों की ही तरह समस्याओं से जूझ रहे हैं. मछलीशहर के सांसद रामचरित्तर के दूसरे गोद लिए हुए केराकत विकास खंड के सरौनी पूरब पट्टी गांव की दशा आरा गांव से और बदतर है. केराकत क्षेत्र के लोग सांसद के क्रियाकलापों से नाराज हैं. सांसद की बदजुबानी भी लोगों को नागवार गुजर रही है. सांसद का सारा ध्यान सिर्फ मछलीशहर पर रहता है, जिससे केराकत क्षेत्र के मतदाता खासे नाराज हैं. प्रतापगढ़ सांसद हरिवंश सिंह ने लालगंज तहसील क्षेत्र के शाहबरी गांव को गोद लिया था. यह गांव भी विकास के नाम पर शून्य है. यही कारण है कि पिछले दिनों सांसद को ग्रामीणों के आक्रोश का भी सामना करना पड़ा. बलिया सांसद भरत सिंह के गोद लिए गांव ओझवालिया, सलेमपुर सांसद नरेंद्र कुशवाहा के गोद लिए गांव टुसौरा, इलाहाबाद सांसद श्यामाचरण गुप्त के गांव बैदावार, फूलपुर सांसद केशव प्रसाद मौर्या के गोद लिए गांव जैतवार डीह, मऊ सांसद दारा सिंह चौहान, सोनभद्र सांसद छोटेलाल खरवार, चंदौली सांसद महेंद्र पांडेय, गाजीपुर सांसद मनोज सिन्हा के गोद लिए हुए गांवों की भी दशा एक जैसी ही है. कुछ सांसद तो गांव को गोद लेने के बाद झांकना तक भूल गए तो कुछ के विकास कार्य कमीशनखोर चाट गए.

लावारिस हैं केंद्रीय मंत्री व उपमुख्यमंत्री के गोद लिए गांव

सांसदों की तो बात छोड़िए, केंद्रीय मंत्री और उत्तर प्रदेश के उप मुख्यमंत्री द्वारा गोद लिए गए गांव भी अगर लावारिस जैसी हालत में हैं, तो अफसोस दोगुना हो जाता है. इलाहाबाद के फूलपुर लोकसभा क्षेत्र से सांसद रहे केशव प्रसाद मौर्या, जो अभी उत्तर प्रदेश सरकार में उपमुख्यमंत्री हैं, ने सांसद के बतौर जैतवार डीह को गोद लिया था. जिला मुख्यालय से 25 किमी दूर सोरांव विकास खंड का यह गांव भगवान शंकर के मंदिर के लिए मशहूर है. मलिमास में यहां के मेले में लाखों श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ती है. इस गांव की हालत में आज तक कोई सुधार नहीं हो पाया है. मौर्य के उपमुख्यमंत्री बनने पर लोगों को भरोसा हुआ था कि गांव के दिन बहुरेंगे, लेकिन ऐसा कुछ नहीं देखने को मिल रहा. अब बात करें गाजीपुर के सांसद और रेल राज्य मंत्री एवं संचार मंत्री स्वतंत्र प्रभार मनोज सिन्हा और चंदौली के सांसद व मानव संसाधान विकास राज्य मंत्री की, तो इनके द्वारा गोद लिए हुए गांव भी उन्हीं बदहाल गांवों की फेहरिस्त में शुमार हैं, जिन्हें सांसदों ने गोद लिया और लावारिस बना दिया.

अनुप्रिया को प्रिय हैं ब्लैक-लिस्टेड संस्थाएं

केंद्र सरकार के तीन साल पूरे होने के बाद अब अगला लक्ष्य 2019 दिखलाई दे रहा है, लेकिन जनता तीन साल में नाकारा साबित हुए सांसदों के औचित्य पर सवाल उठा रही है. तीन वर्षों में काम तो हुआ नहीं, दावे खूब हुए. तीन साल के कार्यकाल के दौरान विकास कार्यों और योजनाओं के क्रियान्वयन में जमकर 'खेल' हुआ. मीरजापुर की सांसद अनुप्रिया पटेल ने तो कायदे-कानून को ताक पर रख अपने संसदीय क्षेत्र की कार्यदायी संस्था को नकारते हुए गैर जनपद की संस्था को अपनी सांसद निधि का काम सौंप दिया. उन्होंने एक ब्लैक लिस्टेड संस्था को भी काम देने से परहेज नहीं किया. इसका खुलासा आरटीआई के तहत मांगी गई जानकारी में हुआ है. अनुप्रिया ने ब्लैक लिस्टेड संस्था राजकीय निर्माण निगम, पैक्सफेड को सांसद निधि का काम दिया. नक्सल क्षेत्र राजगढ़ और पटेहरा विकास खंडों में बनवाई गई सड़कों और विभिन्न मार्गों के निर्माण में भी जमकर बंदरबांट किया गया. खास बात यह है कि महज एक व्यक्ति के लिए सड़क बनवाई गई और कागज पर उसे बरसात में बहा भी दिया गया. ■

feedback@chauthiduniya.com

आदर्श ग्राम योजना में आदर्शहीन सियासत

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2014 के लोकसभा चुनावों के बाद प्रत्येक सांसद को एक गांव गोद लेने तथा 2016 तक उस गांव को आदर्श गांव में विकसित करने का लक्ष्य बनाया था. प्रधानमंत्री मोदी की यह योजना उनकी कई अन्य महत्वपूर्ण योजनाओं में से एक है, लेकिन इस योजना के मार्गदर्शक मंडल को मार्गदर्शन की आवश्यकता है. यह तीन साल पूरा होने के बाद भी सरकार को समझ में नहीं आया. उल्लेखनीय है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की सांसद आदर्श ग्राम योजना देश के गांवों के विकास और उनमें मूलभूत सुविधाओं को विकसित करने की एक महत्वपूर्ण योजना थी. इस योजना के तहत सभी सांसदों को अपने संसदीय क्षेत्र से प्रत्येक वर्ष पांच गांवों का चयन कर, उन्हें आदर्श गांवों में विकसित करने का लक्ष्य था. इस योजना के लिए वही गांव चुना जाना था, जहां मूलभूत सुविधाओं की कमी हो और उसकी आबादी तीन से पांच हजार हो. इसके अलावा ऐसे गांव में न्याय पंचायत का होना अनिवार्य हो. लेकिन हुआ यह कि कुछ सांसदों को छोड़ कर अन्य किसी ने भी गांवों के विकास में कोई रुचि नहीं दिखाई. ग्रामीण विकास मंत्रालय का एक दस्तावेज ऐसा भी सामने आया जिसके मुताबिक देश के 112 सांसदों ने कोई गांव चुना ही नहीं और जिन सांसदों ने चुना भी, वहां कुछ नहीं हुआ. विडंबना यह है कि उत्तर प्रदेश से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के अलावा मुलायम सिंह यादव, मायावती (राज्यसभा सांसद), सोनिया गांधी, मुरली मनोहर जोशी जैसे कद्दावर लोग यूपी से सांसद हैं. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा गोद लिए जयापुर गांव (वाराणसी) में थोड़ा बहुत जो काम हुआ, उसे छोड़कर कहीं पर किसी भी सांसद द्वारा आदर्श ग्राम में कोई काम नहीं कराया गया. मुरली मनोहर जोशी के आदर्श ग्राम सिंहपुर की हालत तो काफी खराब है. गांव में जगह-जगह जलभराव की समस्या है. गांव में गंदगी और सड़ांध भी अत्यधिक है. राजनाथ सिंह के आदर्श गांव बैंती में सिर्फ ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स की एक शाखा खुलने के अलावा दूसरा कोई काम नहीं हुआ. सपा अभिभावक मुलायम सिंह यादव के गोद लिए गांव तमौली में भी विकास कार्यों की कोई शिनाख्त नहीं मिल रही. समाजवादी सरकार के अभिभावक द्वारा गोद लिए हुए गांव की हकीकत उनके विकास के नारे का खंडन करती है. इस मामले में बसपा नेता मायावती अधिक बुद्धिमान साबित हुईं. उन्होंने मलिहाबाद के उस माल गांव को गोद लिया, जो राजधानी लखनऊ के करीब होने और आम-पट्टी होने के कारण पहले से ही ठीक-ठाक स्थिति में है. कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी के गांव उद्धा में विकास का हाल दूसरे बदहाल गांवों जैसा ही है. लब्बोलुबाव यह है कि सांसद आदर्श ग्राम योजना भले ही प्रधानमंत्री मोदी की दूरगामी योजनाओं में से एक हैं, लेकिन उसे क्रियान्वित करने में केंद्र सरकार नाकाम रही है. आदर्श ग्रामों की हालत यह बता रही है कि जनता से सांसदों (जन प्रतिनिधियों) का कोई जुड़ाव नहीं है. कई सांसदों ने काम न होने का कारण सांसद निधि का कम होना बताया तो कोई सांसद एक खास गांव चुनकर अपने वोट बैंक को नाराज नहीं करना चाहता. आदर्श ग्राम के नाम पर भी सस्ती सियासत पीछा नहीं छोड़ रही.

यूपी की जेलें हैं जानवरों का बाड़ा, ठुंसी है कैदियों की भीड़

जेल में बंद न्याय!

यूपी की जेलों में फांसी वाले कैदी भी सबसे अधिक

सूफी यायावर

उत्तर प्रदेश की जेलों में औकात से अधिक कैदी ठुंसे हुए हैं. यहां तक कि फांसी की सजा पाए कैदी भी उत्तर प्रदेश की जेलों में ही सबसे अधिक हैं. इन आधिकारिक आंकड़ों से उत्तर प्रदेश की प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था दोनों की एक साथ समीक्षा हो जाती है. अभियोजन की लचर व्यवस्था के कारण विभिन्न आरोपों में बंद कैदियों को विचाराधीन बन कर जेल में दिन काटना पड़ता है तो धीमी न्यायिक व्यवस्था में 'तारीख पर तारीख' की ऊबाऊ प्रक्रिया विचाराधीन कैदियों का जीवन नष्ट कर देती है. कैदियों की भारी भीड़ के कारण यूपी की जेलें जानवरों का बाड़ा बन चुकी हैं. क्षमता से अधिक कैदियों के भरे होने के कारण जेल प्रबंधन भी विवश है. इस अराजकता का फायदा उठा कर यूपी की जेलों पर माफियाराज चल रहा है.

अब तो जेल विभाग भी कैदियों की भीड़ से त्राहिमाम कर रहा है. जेल विभाग की तरफ से सरकार को बार-बार यह योजना दी जाती है कि वयोवृद्ध कैदियों, महिला कैदियों, अच्छे आचरण वाले कैदियों और लंबे समय से जेल में बंद विचाराधीन कैदियों की रिहाई की जाए, जिससे जेलों का बोझ कम हो सके. लेकिन सरकारें इस पर कोई ध्यान ही नहीं देतीं. नेताओं को बस अपने गुर्गों और साथी

अपराधी सरगनाओं की रिहाई की फिक्र होती है. अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश के कारागार विभाग ने आधिकारिक तौर पर कहा कि यूपी के केंद्रीय कारागारों में 50 प्रतिशत अधिक कैदी रह रहे हैं. जिला कारागारों की स्थिति तो नारकीय है. सरकारी सूचना बताती है कि उत्तर प्रदेश के नैनी (इलाहाबाद), वाराणसी, फतेहाबाद, बरेली और आगरा के पांच केंद्रीय कारागारों में कुल 7438 पुरुष कैदी, 60 महिला कैदी और 120 अल्पवयस्क कैदियों के रखने की क्षमता है. इनमें नैनी जेल ऐसी अकेली सेंट्रल जेल है जहां 60 महिलाओं और 120 अल्पवयस्क कैदियों के रखे जाने की व्यवस्था है. अन्य जेलों में केवल पुरुष कैदी ही रखे जाते हैं. सबसे अधिक क्षमता नैनी जेल की है, जहां 2060 कैदी रखे जा सकते हैं. इसके बाद बरेली केंद्रीय कारागार में 2053 कैदियों के रखने की व्यवस्था है. वाराणसी केंद्रीय कारागार में सबसे कम 996 कैदियों के रखने की क्षमता है. लेकिन हालत यह है कि इन पांच केंद्रीय कारागारों में 30 अप्रैल 2017 तक कुल 9353 सजायाफ्ता कैदी बंद थे. जिसमें 9290 पुरुष, 29 महिलाएं, सात अल्पवयस्क और 27 विदेशी कैदी थे. इनके साथ कुल 2117 विचाराधीन कैदी भी बंद थे, जिनमें 1921 पुरुष, 67 महिलाएं, 119 अल्पवयस्क तथा 10 अन्य कैदी बंद थे. इसके साथ ही महिला कैदियों के साथ 02 बच्चे और 01 बच्ची भी थी. यानि, इन पांच केंद्रीय कारागारों में कुल 11 हजार 470 कैदी थे, जिसमें 11 हजार 211 पुरुष, 96 महिला, 126 अल्पवयस्क, 27 विदेशी और 13 अन्य कैदी थे, जो इन कारागारों की क्षमता से 50 प्रतिशत अधिक है.

अगर पांच केंद्रीय कारागारों, लखनऊ और बरेली के तीन विशेष कारागारों और उत्तर प्रदेश के 70 कारागारों को मिला दिया जाए, तो इन सब जेलों को मिला कर कैदियों को रखने की कुल क्षमता 58 हजार 111 है, जिसमें 51,839 पुरुष, 2,956 महिला और 3,316 अल्पवयस्क कैदियों को रखने की व्यवस्था है. इस साल 30 अप्रैल को यूपी में कुल 27,207 दोषसिद्ध कैदी थे, जिसमें 25,975 पुरुष, 1,079 महिलाएं, 83 अल्पवयस्क और 137 विदेशी कैदी थे. साथ ही महिला कैदियों के साथ 33 बच्चे और 34 बच्चियां भी थीं. उक्त तारीख तक उत्तर प्रदेश के सभी कारागारों में कुल 65,152 विचाराधीन कैदी थे, जिसमें 59,507 पुरुष, 2,706 महिलाएं, 3,001 अल्पवयस्क, 227 विदेशी और 115 अन्य कैदी शामिल थे. इसके अतिरिक्त महिला कैदियों के साथ 239 बच्चे और 165 बच्चियां भी थीं. 30 अप्रैल 2017 तक यूपी के कारागारों में कुल 92,830 कैदी थे, यानि करीब एक लाख कैदी. यह इन कारागारों की वास्तविक क्षमता से 60 प्रतिशत अधिक है. साथ ही विचाराधीन कैदियों की संख्या दोषसिद्ध कैदियों से ढाई गुणा अधिक है.

कैदियों की भीड़ के कारण यूपी की जेलों में अराजकता काफी बढ़ गई है. इस वजह से भ्रष्टाचार और माफियागीरी चरम पर है. जो जितना बड़ा दबंग है, जेल में उसे उतनी ही अच्छी सुविधा मुहैया होती है. जेलों और जेल के अस्पतालों पर माफियाओं और अपराधी सरगनाओं का वर्चस्व है, उस पर किसी का कोई नियंत्रण नहीं. बड़े अपराधियों और माफियाओं के लिए जेलें रिसॉर्ट्स की तरह हैं. वहीं से वे अपना गैंग चलाते हैं और कुछ दिन आराम फरमाते हैं और जेल में रहने तक सुरक्षित भी रहते हैं. जेलों से ही रंगदारी टैक्स और फिरौतियां वसूली जाती हैं. बड़े ठेके-पट्टे देने-दिलाने का काम भी जेलों से होता है. रियल एस्टेट का धंधा भी जेलों से फल-फूल रहा है. जेलों में बंद माफिया मोबाइल के जरिए अपना काम आसानी से कर रहे हैं. उनके पास दर्जनों सिम कार्ड होते हैं. इनके मुलाकाती भी आसानी से जेलों में बेरोक-टोक मिलते हैं. दबंगों और

माफियाओं को सामान्य बैरक में नहीं रहना पड़ता. उनके लिए सामान्य कैदियों की सेवादारी भी उपलब्ध रहती है. भोजन से लेकर शराब, सिगरेट, नशीली दवाएं और अय्याशी की तमाम सुविधाएं जेलों में उपलब्ध हैं. जेलकर्मियों को पैसा दें और सुख भोगें. सामर्थ्यवान और माफिया कैदियों को जेल जाने के फौरन बाद ही जेल प्रबंधन की मिलीभगत से उन्हें अस्पताल में दाखिला मिल जाता है. इसके बाद वे अस्पताल में मौज करते हैं और सुविधाओं का लाभ उठाते हैं. अस्पतालों से ही अपना धंधा चलाते हैं और वहीं मुलाकातियों का दरबार भी लगाते हैं. यूपी की जेलों में बंद माफिया सरगना बबलू श्रीवास्तव, मुख्तार अंसारी, बृजेश सिंह, मुन्ना बजरंगी, खान मुबारक, सुभाष ठाकुर, डॉ. उदयभान, मुकीम काला, योगेश भदौड़ा, उधम सिंह करनावन, विनोद बावला, धनंजय राय, रणदीप भाटी, अनिल दुजाना जैसे माफिया सरगनाओं का जेलों से ही अपराध-साम्राज्य चलता है. जेल और प्रशासन के अफसर इन माफियाओं के एजेंट के बतौर काम करते हैं.

माफियाओं की जेलें बदलीं, पर कुछ हासिल नहीं हुआ

योगी आदित्यनाथ ने प्रदेश के मुख्यमंत्री का पदभार संभालते ही सौ से अधिक बड़े अपराधियों और माफिया सरगनाओं की जेलें इधर से उधर बदलीं. उन्हें अपने गृहनगर से काफी दूर दूसरी जेलों में भेजा गया ताकि उनका स्थानीय नेटवर्क निष्क्रिय किया जा सके. जिनकी जेलें बदली गईं उनमें मुख्तार अंसारी, मुन्ना बजरंगी, अतीक अहमद, शेखर तिवारी, अनवारुल हक, मुकीम उर्फ काला, उदयभान सिंह उर्फ डॉक्टर, किरनपाल उर्फ टीटू, रॉकी उर्फ काकी और आलम सिंह जैसे कुख्यात नाम शामिल हैं. मुख्तार अंसारी को लखनऊ से बांदा जेल भेजा गया. अतीक अहमद को नैनी सेंट्रल जेल से देवरिया, मुन्ना बजरंगी को झांसी जेल से पीलीभीत और शेखर तिवारी को बाराबंकी से महाराजगंज जेल शिफ्ट किया गया है. इसी तरह अन्य कैदियों को भी दूर-दराज की जेलों में शिफ्ट किया गया, लेकिन आपराधिक नेटवर्क को नष्ट करने या नाकाम करने का सरकार का लक्ष्य पूरा नहीं हो पाया. ■

feedback@chauthiduniya.com

यूपी की जेलों में सबसे अधिक फांसी की सज़ा पाए क़ैदी

उत्तर प्रदेश की जेलें एक तरफ अत्यधिक कैदियों को अपने यहां ठूंसे रखने का रिकॉर्ड बना रही हैं, तो दूसरी तरफ सबसे अधिक फांसी वाले कैदियों को भी रखी हुई हैं. यूपी की जेलों में 69 कैदी ऐसे हैं, जो मौत की सजा के तामील होने का इंतजार कर रहे हैं. लेकिन स्थिति यह भी है कि यूपी की कई जेलों में जल्लाद नियुक्त नहीं हैं. ऐसी जेलों में इलाहाबाद की नैनी सेंट्रल जेल भी शामिल है. यूपी की विभिन्न जेलों में कुल 69 ऐसे कैदी हैं, जिन्हें न्यायालय द्वारा फांसी की सजा सुनाई जा चुकी है. इनमें निठारी में कई मासूम बच्चों की हत्या करने वाला सुरेन्द्र कोली भी शामिल है. फांसी के सजायापता कैदियों में से ज्यादातर कैदियों ने अपनी सजा को ऊपरी अदालत में चुनौती दे रखी है. लेकिन कुछ कैदी ऐसे भी हैं, जिनकी सजा सुप्रीम कोर्ट ने भी बरकरार रखी है और उनकी दया याचिका राष्ट्रपति के पास लंबित है.

नैनी जेल में फांसी के पांच सजायापता कैदी बंद हैं. निचली अदालत से उन्हें फांसी की सजा सुनाई जा चुकी है. अब इनका मामला हाईकोर्ट में लंबित है. हालांकि, नैनी सेंट्रल जेल में फांसी देने की कोई व्यवस्था भी नहीं है. कारागार विभाग ने काफी अरसे से यहां कोई जल्लाद भी नियुक्त नहीं किया है. इसी तरह ससुराल के सात लोगों की हत्या करने का आरोपी सलीम आगरा सेंट्रल जेल में फांसी की सजा के तालीम होने का इंतज़ार कर रहा है. सलीम की पत्नी शबनम पर भी अपने माता-पिता और दो भाइयों समेत परिवार के सात लोगों की हत्या का इल्जाम है. वह मुरादाबाद जेल में बंद है. सत्र न्यायालय ने इन दोनों का डेथ वॉरंट जारी कर दिया था, लेकिन कानूनी नुक्तों में यह मामला फंसा हुआ है. उत्तर प्रदेश के बरेली केंद्रीय कारागार में भी दो ऐसे अपराधी हैं, जिन्हें अदालत ने फांसी की सजा सुना रखी है. लेकिन उन्होंने निचली अदालत के फैसले को हाईकोर्ट में चुनौती दे रखी है. फतेहगढ़ सेंट्रल जेल में एक कैदी पप्पू कोरी को निचली अदालत से फांसी की सजा सुनाई गई है. यह मामला भी ऊपरी अदालत में अपील में है. उत्तर प्रदेश के गौतमबुद्ध नगर (नोएडा) के निठारी में नरकंकालों के मिलने के बाद सनसनी बने हत्यार-ोपी सुरेंद्र कोली को फांसी की सजा सुनाए जाने के बाद मेरठ जेल में बंद रखा गया है. उसे एक से ज्यादा मामलों में फांसी की सजा सुनाई जा चुकी है, लेकिन यह मामला भी अभी लंबित ही है.

फांसी के सजायाफ्ता कैदियों के मामले में उत्तर प्रदेश की जेलें पूरे देश में अव्वल हैं. दूसरा स्थान महाराष्ट्र का है. महाराष्ट्र की जेलों में 41 ऐसे कैदी बंद हैं, जिन्हें विभिन्न अदालतों से फांसी की सजा मुकर्रर हो चुकी है, लेकिन ऊपरी अदालतों में अपील के कारण लंबित हैं. आंकड़े बताते हैं कि देश की विभिन्न जेलों में कुल 325 कैदी फांसी के सजायापता कैदी हैं, जिन्हें विभिन्न अदालतों से मौत की सजा सुनाई जा चुकी है. इस सूची में उत्तर प्रदेश शीर्ष पर है. जैसा ऊपर बताया कि यूपी की जेलों में 69 कैदी बंद हैं, जिन्हें मौत की सजा सुनाई जा चुकी है. यह आंकड़ा राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो का है. विशेषज्ञों का आकलन है कि 2017 तक मौत की सजा प्राप्त कैदियों का ताजा आंकड़ा चार सौ के पार चला गया है. विडंबना यह है कि देश की विभिन्न जेलों में फांसी की सजा प्राप्त कैदियों की संख्या कितनी है, इसका कोई आधिकारिक और अद्यतन रिकॉर्ड केंद्र सरकार के पास नहीं है. गृह मंत्रालय इतना ही कह पाता है कि जेलों में बंद मृत्युदंड प्राप्त कैदियों की सबसे ज्यादा संख्या उत्तर प्रदेश उसके बाद महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और बिहार में है. फांसी की सजा पाए कैदियों की संख्या मध्य प्रदेश में 38 और बिहार में 30 है. कर्नाटक की जेलों में 22 कैदी फांसी की सजा प्राप्त हैं, तो केरल में इनकी संख्या 16 है. दिल्ली की तिहाड़ जेल में मृत्युदंड पाए नौ कैदी बंद हैं.

एक अध्ययन के आधार पर हम यह भी जानते चलें कि फांसी की सजा पाने वाले इन कैदियों में 84 प्रतिशत कैदी ऐसे हैं, जिन्होंने पहली बार अपराध किया. इन कैदियों में अधिकतर गरीब और कम पढ़े लिखे हैं. फांसी की सजा पाए 74.1 प्रतिशत कैदी आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के हैं. इनमें 76 प्रतिशत अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति, ओबीसी या धार्मिक अल्पसंख्यक समूह से हैं. इन कैदियों में 23 प्रतिशत ऐसे हैं, जो कभी स्कूल नहीं गए, जबकि 61.6 प्रतिशत कैदी माध्यमिक तक की शिक्षा पूरी नहीं कर पाए. फांसी की सजा पाए कैदियों में 34 प्रतिशत ओबीसी, 24.5 प्रतिशत एससी/एसटी और 24 प्रतिशत सामान्य वर्ग के हैं. 20.7 प्रतिशत कैदी धार्मिक अल्पसंख्यक समूह के हैं. रिपोर्ट के अनुसार फांसी की सजा पाने वाले कैदियों में 12 महिलाएं भी शामिल हैं. देश में सामाजिक संगठनों की तरफ से लगातार यह मांग उठती रही है कि जनहित और देशहित में यह जरूरी है कि फांसी की सजा पाए लोगों के खिलाफ लंबित मामलों का जल्द से जल्द निबटारा हो, क्योंकि फांसी के मामलों का लंबित होना अपने आप में घोर अन्याय है. फांसी की सजा को लटका कर रखना अमानवीय है. लिहाजा, सरकार और न्यायालय दोनों को मिलकर ऐसा समाधान निकालना चाहिए कि ऐसे मामले लंबे समय तक लंबित न रहें.

फिर कठघरे में सरकार सिस्टम और संस्थान

इर्शादुल हक

बिहार में पिछले डेढ़ सप्ताह से कई खबरें खुद को दोहरा रही हैं. अगर आपके पास जून 2016 के अखबार हों तो उनके पन्नों पर जरा एक नजर डालें. आप देखेंगे कि जून 2017 में कुछ वैसी ही खबरें अखबारों में छपी हैं, जैसी 2016 के जून महीने में छपी थीं. दोनों खबरों में तमाम समानताएं थीं, कुछ बदला था तो बस पात्रों का नाम. अब जरा गौर कीजिए कि पिछले साल जून में बिहार बोर्ड 12वीं कक्षा का रिजल्ट प्रकाशित होने के बाद रिजल्ट घोटाले की खबर सुर्खियों में थी. पिछले वर्ष रूबी राय ने बिहार में टॉप किया था. रिजल्ट आने के बाद एक-दो दिन तक सभी चीजें सामान्य थीं. रूबी राय की कामयाबी से प्रभावित होकर मीडिया के लोगों ने उसका साक्षात्कार किया. लेकिन सारी चीजें रेत की दीवार की तरह भरभरा गईं, जब रूबी की बातों या उसके ज्ञान से यह साफ हो गया कि वह कहीं से भी टॉपर नहीं है. लोकल चैनलों के बाद दिल्ली के अखबारों और चैनलों ने भी इस खबर को खूब प्रसारित किया. रूबी ने मीडिया के लगातार हमलों से परेशान होकर सारी सच्चाई उगल दी. इसके बाद बोर्ड के तत्कालीन अध्यक्ष लालकेश्वर प्रसाद सामने आए. उन्होंने बोर्ड में किसी तरह की गड़बड़ी से इनकार किया और रूबी के रिजल्ट को सही करार दिया. इसके बाद एक बड़े घोटाले का पर्दाफाश हुआ, जिसे दोहराने की जरूरत नहीं. यहां पिछले वर्ष की खबर के बारे में जितनी बातें दोहराई गई हैं, लगभग वैसी ही खबरें जून 2017 के प्रथम व दूसरे सप्ताह के अखबारों में छाई हैं. हां, कुछ बातें और कुछ तथ्य जरूर अलग रहे, जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे. इस वर्ष गणेश कुमार 12वीं कला संकाय के टॉपर हैं. फिर वही हुआ, कुछ पत्रकार गणेश के पास पहुंचे और उसका साक्षात्कार लिया. कला संकाय के छात्र गणेश का एक विषय संगीत भी था. संगीत में उन्हें 90 प्रतिशत अंक प्राप्त हुए थे. पत्रकारों ने उनसे संगीत पर बात की. हारमोनियम बजवाए. सुर, ताल, मुखड़ा, अंतरा पर बातें कीं. कमाल की बात यह थी कि गणेश भी ठीक रूबी राय (पिछले वर्ष की टॉपर) की तरह आत्मविश्वास से भरे थे. पत्रकारों के हर सवाल का जवाब उन्होंने पूरे आत्मविश्वास से, पर बिल्कुल मनगढ़ंत दिया. पत्रकारों की खिंचाई के बाद गणेश का आत्मविश्वास टूटा. उसी तरह हारमोनियम से स..रे..गा..मा.. की धुन तक निकाल पाने में असमर्थ गणेश की कलई खुलती चली गई. जून 2016 और जून 2017 की खबरों की समानता का यह अद्भुत इत्तेफाक था. खबरों से जुड़ा संस्थान भी वही, खबरों के पात्र भी वही और यहां तक की खबरों की प्रकृति भी वही.

दोनों साल के जून महीने की इन खबरों से कई प्रश्न दिमाग में उभरते हैं. संस्थान, सरकार और सिस्टम पर गंभीर सवाल तब भी उठे थे, आज भी उठे हैं. तब भी राज्य की बागडोर नीतीश कुमार के हाथों में थी और आज भी बागडोर उन्हीं के हाथों में है. तब भी नीतीश कुमार ने बहुत सतर्कता, सक्रियता और सख्ती से उस घोटाले से निपटने का प्रण किया था. आज भी नीतीश कुमार ने कुछ वैसा ही रुख अपनाने का ऐलान किया है.

हमने ऊपर जून 2016 और जून 2017 के बिहार 12वीं बोर्ड परीक्षा रिजल्ट के संबंध में बताया है कि कैसे खबरों ने खुद को दोहराया. लेकिन अब हम इन दोनों वर्षों में उन खबरों पर भी जरा नजर दौड़ा लें, जो हैं तो बिहार बोर्ड की परीक्षा परिणाम से जुड़ीं, पर जिन खबरों ने खुद को नहीं दोहराया. इस तरह देखें तो 2017 के 12वीं बोर्ड परीक्षा के परिणाम की सबसे खास बात यह थी कि इस परीक्षा में 100 में से 65 छात्र फेल हो गए. अखबारों ने इस परीक्षा परिणाम की खबर छापते हुए यह शीर्षक नहीं लगाया कि कितने प्रतिशत छात्र पास हुए, बल्कि शीर्षक था कि कितने प्रतिशत छात्र फेल हुए. स्वाभाविक तौर पर यह परीक्षा परिणाम दुखद था. जाहिर है कि खबरों के शीर्षक की प्रकृति भी बदलनी थी, सो बदल गई. इतने निराशाजनक परिणाम बिहार में कब आए थे, इसका हिसाब किताब शुरू हुआ और बात इतनी बढ़ी कि सारा विपक्ष और ज्यादातर मीडिया राज्य सरकार पर पिल पड़े. लगातार आलोचना से तंग आकर बिहार बोर्ड के चेयरमैन आनंद किशोर, जो न सिर्फ एक वरिष्ठ आईएएस अधिकारी हैं, बल्कि राज्य के तेज-तर्रार अफसरों में से एक माने जाते हैं, ने प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाई और ऐलान कर दिया कि बिहार बोर्ड द्वारा पिछले एक वर्ष में सुधारात्मक प्रयास और कदाचारमुक्त परीक्षा संचालन में सफलता के कारण ऐसा परिणाम आया है. आनंद किशोर का इतना कहना तो जैसे आग में घी का काम कर गया. लोगों ने सवाल पर सवाल दागने शुरू कर दिए. पूछा गया कि कदाचारमुक्त परीक्षा के नाम पर छात्रों को बदनाम क्यों किया जा रहा है. अगर कदाचारमुक्त परीक्षा की जिम्मेदारी बोर्ड की है तो स्कूलों में पढाई सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी कौन उठाएगा. साथ ही यह बात भी याद दिलाई गई कि उत्तर पुस्तिका मूल्यांकन के समय संबंधित विषयों के शिक्षक हड़ताल पर थे, जिसके चलते अयोग्य शिक्षकों द्वारा उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करवाया गया. आरोप-प्रत्यारोप का यह दौर अभी चल ही रहा था कि अचानक कला संकाय के 12वीं की परीक्षा में टॉपर गणेश कुमार की हकीकत मीडिया में छा गई, जिसका जिक्र ऊपर हो चुका है. इसका प्रभाव इतना प्रचंड था कि सौ में 65 छात्रों के फेल होने की खबर कहीं गुम हो कर रह गई. बिहार विद्यालय परीक्षा समिति, परीक्षा परिणाम और रिजल्ट में कथित घोटाले की खबर पर एक जून से कोहराम मचना शुरू हुआ. इस दौरान बोर्ड अध्यक्ष आनंद किशोर ने दो-तीन बार प्रेस कॉन्फ्रेंस कर सफाई दी. शिक्षा मंत्री अशोक चौधरी ने एक तरह से आनंद किशोर को धमकाया कि जो भी दोषी होगा, उसे बख्शा नहीं जाएगा. लेकिन मुख्यमंत्री नीतीश कुमार की अपनी रणनीति है. वह पहले विवादों पर लोगों की सिर्फ सुनते हैं, फिर चुपचाप माहौल का आकलन करते हैं. इस बार भी नीतीश कुमार ने वही किया. लगातार चार दिन की चुप्पी के बाद उन्होंने पांच जून को जुबान खोली. उन्होंने ऐलान किया कि बोर्ड परीक्षा में कोई धांधली नहीं हुई. इसके पहले वे कह चुके थे कि बोर्ड परीक्षा में बड़ी संख्या में छात्र असफल हुए हैं, तो छात्रों का यह अधिकार है कि वे अपनी उत्तर पुस्तिकाओं की दोबारा जांच कराने के लिए आवेदन दें. नीतीश कुमार की इस घोषणा का कुछ खास असर नहीं हुआ. वामपंथी छात्र संगठन जो पहले रोज से ही आंदोलन कर रहे थे, डटे रहे.

महत्वपूर्ण सवाल

जून 2016 में हुए टॉपर घोटाले के बाद, बिहार की शिक्षा व्यवस्था की देश भर में बदनामी हुई थी. बोर्ड के तत्कालीन अध्यक्ष लालकेश्वर प्रसाद, उनकी पत्नी, शिक्षा माफिया के रूप में चर्चित बच्चा राय समेत सौ लोग जेल में डाले गए. इसके बाद नीतीश कुमार ने काफी गंभीरता दिखाई. तेज तर्रार आईएएस अफसर आनंद किशोर को बोर्ड के चेयरमैन की कुर्सी सौंपी. आनंद किशोर पटना प्रमंडल के कमिश्नर के अलावा जेल आईजी के पद पर भी हैं. पहले से दो महत्वपूर्ण पद संभाल रहे किशोर की काबिलियत पर नीतीश को भरोसा था. उन्हें शायद यह भी पता था कि काम के दबाव के बावजूद आनंद किशोर बोर्ड की अतिरिक्त जिम्मेदारी बखूबी संभाल लेंगे. हकीकत यह है कि आनंद किशोर ने बोर्ड की जिम्मेदारी बखूबी निभाने की कोशिश भी की. पिछले एक वर्ष में बोर्ड की दरो-दीवार में भ्रष्टाचार के छेद को भरने, उसमें आमूल चूल परिवर्तन करने के जोखिम भरे फैसले आनंद किशोर ने लिए भी. आनंद किशोर के खिलाफ शिक्षा मंत्री अशोक चौधरी ने भले ही धमकी भरे बयान दिए हों, लेकिन ऐसा लगता है कि मुख्यमंत्री आनंद किशोर के कामों के प्रति आश्वस्त हैं. इसलिए इन तमाम हंगामों के बाद जो दो तीन ठोस फैसले लिए गए, उससे कुछ चीजें स्पष्ट हो जाती हैं. टॉपर गणेश कुमार के रिजल्ट को रद्द नहीं किया गया, उसे निलंबित किया गया. गणेश को गिरफ्तार तो जरूर किया गया, लेकिन परीक्षा में चीटिंग करने के आरोप में नहीं, बल्कि उम्र का प्रमाण पत्र गलत पेश करने के लिए. प्रमाण पत्रों से गणेश की वास्तविक उम्र 42 वर्ष साबित हुई है. उन्होंने 1990 में ही दसवीं की परीक्षा पास कर ली थी. लेकिन गणेश ने जो लिखित परीक्षा दी, उसके बारे में बोर्ड को कोई संदेह नहीं. हां बोर्ड यह मानता है कि प्रैक्टिल परीक्षा में गणेश को जो अंक मिले, वह उसकी योग्यता से कहीं ज्यादा थे. लिहाजा बोर्ड ने अगली बार से प्रैक्टिकल की परीक्षा होमसेंटर पर नहीं करवाने का फैसला लिया. इसके अलावा सरकार और बोर्ड के स्तर पर जो फैसले लिए गए हैं उसमें से एक यह भी है कि 65 प्रतिशत बच्चों के फेल होने के कारणों की जांच की जाए. इस बीच छात्रों को दो तीन विकल्प दिए गए हैं. पहला- दो विषयों तक फेल छात्रों को ग्रेस दिया जाएगा. दूसरा- छात्र मामूली फीस देकर अपनी उत्तर पुस्तिकाओं की जांच करा सकेंगे. तीसरा- जुलाई में ही कम्पार्टमेंटल एक्जाम लिया जाएगा और उसके बाद जारी किए जाने वाले रिजल्ट में कम्पार्टमेंटल परीक्षा लिखा नहीं होगा. यानी यह माना जाएगा कि छात्र नियमित परीक्षा में ही पास हुआ है.

बोर्ड और सरकार के स्तर पर इन तमाम कवायदों के बावजूद एक सवाल अब भी अनुत्तरित रह जाता है कि जिस तरह जून 2016 ने तमाम कोशिशों के बावजूद खुद को जून 2017 में दोहराया है यह कैसे सुनिश्चित हुआ जाए कि जून 2017 खुद को जून 2018 में नहीं दोहराएगा? ■

feedback@chauthiduniya.com

प्रशासन को ठेंगा दिखा रहे शराब तस्कर

एसके गांधी

feedback@chauthiduniya.com

शराब को लेकर पूर्वी बिहार के जिलों में तस्करों और प्रशासन के बीच चूहे-बिल्ली का खेल जारी है. मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के कड़े तेवर के बाद अब जहां जिले में प्रशासनिक चौकसी तेज हो गई है, वहीं शराब तस्कर अपना माल खपाने के लिए अलग-अलग तरीके ईजाद कर रहे हैं. गौरतलब है कि सूबे में बीते 5 अप्रैल 2016 से निबंधन, उत्पाद एवं मद्य निषेध विभाग की ओर से पूर्ण शराबबंदी लागू होने के बाद 2016-17 में लखीसराय जिले में कुल 175 मामले दर्ज किए गए, जिसमें 300 लोगों को गिरफ्तार किया गया.

विदित हो कि बिहार की नई शराब नीति के अनुसार, शराब का व्यापार अथवा खरीद-फरोख्त, परिवहन व सेवन करना पूर्णत: गैरकानूनी है. इस कानून का उल्लंघन करने पर राज्य सरकार की ओर से न्यूनतम 10 साल की सजा, अधिकतम उम्रकैद एवं एक लाख से लेकर 10 लाख रुपए जुर्माने का भी प्रावधान है. नशामुक्त एवं स्वस्थ बिहार बनाने के संकल्प एवं आदतन शराबियों का विशेष इलाज करवाने के लिए अलग से चिकित्सकों की भी प्रतिनियुक्तियां की गई हैं. नए कानून का सख्ती से अनुपालन कराने के लिए बिहार पुलिस मुख्यालय की ओर से भी मद्य निषेध नियंत्रण कक्ष गठित किए गए हैं. इस बीच राज्य सरकार की ओर से शराबबंदी कानून को जनसामान्य के बीच प्रभावी बनाने के लिए सामाजिक जन जागरण अभियान भी चलाए जा रहे हैं. इसके बावजूद सरकार व प्रशासन की इन तैयारियों को ठेंगा दिखाते हुए जिले में अब भी रेल एवं सड़क मार्ग से अवैध शराब का उत्पादन एवं सेवन का दौर जारी है. हां एक बात जरूर है कि अब शादी-ब्याह के दौरान शराब पीकर हंगामा मचाने वालों में काफी हद तक कमी आई है. अब पिछड़े इलाकों में सुबह शाम शराब पीकर पारिवारिक कलह एवं सामाजिक अशांति फैलाने वालों की संख्या में भी काफी कमी दिखने लगी है.

इसी क्रम में समाहरणालय के गांधी मैदान थाना के मालखानों में रखे शराब को चूहे पी जाने की घटना उजागर होने के बाद प्रशासन सजग है. अब छापेमारी के दौरान बरामद शराब को नष्ट करने का आदेश जारी किया गया है. इसके बाद जिला प्रशासन ने तत्परता दिखाते हुए जिले के विभिन्न थानों में बरामद 3,222 लीटर देशी, विदेशी, मसालेदार व महुआ शराब को बुलडोजर चलाकर नष्ट कर दिया, जिसका वर्तमान बाजार मूल्य तकरीबन एक करोड़ रुपए है. इस प्रकार जिले में इन कार्रवाईयों को तीसरी दफा अंजाम देकर विभिन्न प्रकार के शराबों को रोड रोलर चलाकर नष्ट कर दिया गया. इसके पूर्व बड़हिया एवं कबैया थाना क्षेत्र में भी दो राउंड में शराब नष्ट किए जा चुके हैं. जिलाधिकारी सुनील कुमार के अनुसार इसमें विभिन्न थाना पुलिस की लगभग 3222 हजार लीटर शराब को समाहरणालय स्थित गांधी मैदान के बने हेलीपैड पर दो रोड रोलर के सहारे सार्वजनिक तौर पर नष्ट किया गया है. उन्होंने बताया कि मामला कोर्ट में विचाराधीन होने के कारण 5 फीसदी शराब नष्ट किया जाना बाकी है. हालांकि 95 फीसदी बरामद शराब अभी तक नष्ट किए गए हैं. जिलाधिकारी के अनुसार शराबबंदी के दौरान बरामद वाहनों एवं अन्य परिसम्पतियों को भी सार्वजनिक तौर पर शीघ्र नीलाम किया जाएगा. इन कार्यों के लिए विधिसम्मत प्रक्रिया का पालन किया जा रहा है. शराब नष्ट करने के बाद उसके कार्टून एवं डिब्बों को भी आग लगाकर नष्ट कर दिया गया है. पुलिस अधीक्षक अशोक कुमार ने कहा कि कुल एक करोड़ रुपए लागत मूल्य के शराब को सरकार के निर्देशानुसार नष्ट किया गया है. इससे शराबबंदी की दिशा में एक बेहतर संदेश कायम हुआ है. पुलिस अधीक्षक ने जिलावासियों से शराब के अवैध धंधों को छोड़ने की गुजारिश की है. उन्होंने जनसामान्य से इस समाज विरोधी तस्करी के धंधों को छोड़कर किसी अन्य रोजगार से जुड़ने की भी सलाह दी है. उन्होंने कहा कि शराब के धंधों में शामिल लोगों की सम्पत्तियों को भी जल्द ही नीलाम किया जाएगा.

प्रशासन के लिए यह चिंता की बात है कि शराब की तस्करी में अब बच्चों को भी शामिल कर लिया गया है. स्कूल बैग में शराब रखकर पार्टी के पास पहुंचाने के कई मामले हाल में सामने आए हैं. बच्चों पर शक नहीं होने के कारण शराब तस्कर आसानी से अपना धंधा चला रहे हैं. बच्चों का इस धंधे में इस्तेमाल होने के बाद प्रशासन भी अब चौकन्ना हो गया है. पुलिस अब संदिग्ध बच्चों पर भी नजर रख रही है. खाने-पीने के वाहनों में भी शराब की बोतलें सप्लाई होने की बात सामने आई है. बालू से भरी गाड़ी से भी शराब भेजा जा रहा है. कह सकते हैं कि प्रशासन अगर तस्करों के लिए एक रास्ता बंद करती है तो वे दूसरा खोज लेते हैं. इसलिए प्रशासन के लिए जरूरी है कि वह चौबीसों घंटे चौकस रहें ताकि पूर्ण शराबबंदी के सपने को पूरा किया जा सके.

feedback@chauthiduniya.com

कहीं गच्चा न दे जाए महिला माओवादी दस्ता

सुनील सौरभ

देश में बढ़ती नक्सली घटनाओं को देखते हुए अब सुरक्षा बलों ने नक्सलियों के खिलाफ कार्रवाई तेज कर दी है. नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में केन्द्रीय सुरक्षा बलों के सर्च ऑपरेशन और दबिश से नक्सलियों में खलबली मची है. सुरक्षा बलों की सख्ती से नक्सलियों को अपने यहां शरण देने वाले समर्थक भी परेशान हैं. लेकिन, माओवादियों ने सुरक्षा बलों के समक्ष घुटने टेकने के बजाय अपनी रणनीति बदल ली है. अब माओवादियों की योजना है कि सुरक्षा बलों से मुठभेड़ के दौरान महिला दस्ते को फ्रंट पर रखा जाए. महिला माओवादियों के पीछे पुरुष दस्ता होगा. रणनीति के अनुसार जैसे ही सुरक्षा बल महिला दस्ता को अपने कब्जे में लेने का प्रयास करेंगे, वैसे ही पीछे से पुरुष

दस्ता सुरक्षा बलों पर टूट पड़ेगा. वैसे भी नक्सली पूरी रणनीति बनाकर ही कहीं धावा बोलते हैं. योजनाबद्ध तरीके से की गई कार्रवाई के कारण ही नक्सली अक्सर सुरक्षा बलों पर भारी पड़ते हैं. यदि रणनीति में चूक रह गई, तभी नक्सलियों को मुंह की खानी पड़ती है. पुलिस को खुफिया विभाग से मिली सूचना के बाद अब सुरक्षाबलों ने भी माओवादियों की हर गतिविधियों पर पैनी नजर रखनी शुरू कर दी है.

हाल में केन्द्रीय सुरक्षा बल कोबरा, सीआरपीएफ, एसएसबी, सैप, एसटीएफ तथा बिहार-झारखंड पुलिस के संयुक्त सर्च अभियान जारी रहने के बाद माओवादियों ने नई रणनीति तैयार की है. इस रणनीति के तहत मुठभेड़ के दौरान महिला माओवादियों को फ्रंट पर रखने की योजना बनाई गई है और पीछे से पुरुष दस्ता तैयार रहेगा. जाहिर सी बात है कि यदि पुलिस महिला माओवादियों पर हमला बोलेगी, तो तैयार बैठा पुरुष दस्ता मोर्चा संभालने में तनिक भी देर नहीं करेगा.

इधर, गया जिले के झारखंड सीमा से लगे नक्सल प्रभावित शेरघाटी अनुमंडल क्षेत्र में नक्सली घटनाओं के दौरान पुलिस वर्दी युक्त अत्याधुनिक हथियार से लैस महिला माओवादियों के सक्रिय होने की पुष्टि खुफिया विभाग ने भी की है. खुफिया विभाग ने इस संबंध में रिपोर्ट देकर सुरक्षा बलों को अलर्ट किया है.

बिहार पुलिस ने गया जिले के शेरघाटी अनुमंडल के विभिन्न इलाकों में महिला दस्ता से जुड़े आठ महिला कमांडरों की एक सूची बनाई है. इन सभी महिला माओवादी कमांडरों की बिहार-झारखंड की सीमा पर गत तीन वर्षों में दो दर्जन नक्सली हमले में बड़ी भूमिका बताई जाती है.

इन कुख्यात महिला माओवादियों द्वारा नक्सली घटनाओं में सुरक्षा बलों को गुमराह करने, बारूदी सुरंग लगाने, हमला करने से लेकर हथियार लूटने तक में बड़ी भूमिका निभाने की जानकारी खुफिया विभाग को मिली है. इनमें शेरघाटी अनुमंडल के आठ महिला माओवादियों को चिन्हित किया गया है. इन महिला माओवादियों को बिहार के गया, जहानाबाद, औरंगाबाद, अरवल, नवादा तथा झारखंड के पलामू, चतरा, हजारीबाग, लातेहार आदि जिलों की पुलिस भी तलाश कर रही है. केन्द्रीय सुरक्षा बलों पर हुए अधिकतर हमलों में महिला माओवादियों की सक्रिय भूमिका रहती है. तलाशी अभियान शुरू होते ही महिला माओवादी घरेलू महिला का रूप लेकर आसानी से अपने को बचा लेती हैं. इस रिपोर्ट के बाद सुरक्षा बलों ने महिला माओवादियों पर भी कार्रवाई शुरू कर दी है. सुरक्षा बल अब तक माओवादियों के महिला दस्ते एवं इसके कमांडर की जान बख्श देते थे. अब चाहे माओवादी कोई भी रणनीति अपनाएं, सुरक्षा बल किसी भी हालत में नक्सलियों को छोड़ने के मूड में नहीं दिख रहे हैं.

जमीन, मजदूरी और इज्जत की लड़ाई के साथ बिहार में नक्सली आंदोलन शुरू हुआ था. 70 के दशक में नक्सलबाड़ी से आकर नक्सलियों ने यहां अपना कदम रखा था. सामंती व्यवस्था से ऊब चुके लोगों ने नक्सली संगठन का साथ दिया. संगठन को पल्लवित-पुष्पित करने में जी-तोड़ मेहनत की और अपने प्राणों को भी होम कर दिया. इसी के प्रतिशोध में कई निजी सेनाएं भी बनी और फिर निजी सेनाओं और नक्सली संगठनों के टकराव के गवाह बिहार के कई गांव बने. केसारी, लखवर, दरियापुर, मेलबरिया, देवसहियारा, सावन बिगहा, मेनसिम्हा, काकरबिगहा, तीनडाहा, बारा, एकवारी, गौहरपुर, नाढ़ी, बथानी टोला, सरथुआ, राघोपुर, लक्ष्मणपुर बाथे, चौरम, शंकरबिगहा, नारायणपुर, सेनारी, जहिरी बिगहा, सिंदानी, मियांपुर इत्यादि गांवों में आज भी इन संगठनों के बीच टकराव के सबूत छिपे हैं.

भूमि सेना, लोरिक सेना, लाल सेना, हरा सेना, सत्येन्द्र सेना, श्रीकृष्ण सेना, कुंअर सेना, सनलाइट सेना, ब्रह्मर्षि सेना, सवर्ण लिबरेशन फ्रंट, किसान संघ, अली संघ, पांडव सेना, रणवीर सेना, किसान सुरक्षा समिति, नवल सतराजित सेना, चुन्नू सेना, गंगा सेना सहित मजदूर किसान संघर्ष समिति, भारत की माओवादी कम्युनिस्ट पार्टी, लालखंडी, सीपीआई एमएलल पीपुल्सवार इत्यादि संगठनों की वजह से न जाने कितनों के आशियाने उजड़ गए. अब भी बिहार-झारखंड के कई प्रखंडों में नक्सली संगठनों का बोलबाला है.

बिहार में नक्सली संगठनों के खिलाफ कोई बड़ा अभियान नहीं चलाए जाने से इन संगठनों के हौसले बुलंद हैं. सुरक्षा बलों को लोकल पुलिस से ताल-मेल बिठाकर और खुफिया सूचना के आधार पर नई रणनीति अपनानी होगी. बिहार के सभी नक्सल प्रभावित क्षेत्र के निवासियों को 'नए सवेरे' का इंतजार रहेगा.■

feedback@chauthiduniya.com

बेगूसराय में रजनीश और भोला आमने-सामने

सुरेश चौहान

'कहीं पे निगाहें, कहीं पे निशाना' की इस पंक्ति को इन दिनों भाजपा के दो दिग्गज राजनीति में चरितार्थ कर रहे हैं. 2019 लोकसभा चुनावी मोड में आते ही भाजपा के दो दिग्गजों में न सिर्फ आरोप-प्रत्यारोप का दौर शुरू हो गया है, बल्कि मामला पुलिस थाने तक पहुंच गया है. पार्टी के दो महारथियों की भिड़ंत में भाजपा नेताओं का अन्तर्कलह खुलकर पटल पर आ चुका है. इससे पार्टी की छवि धूमिल हो रही है. पार्टी के कार्यकर्ता नेताओं के इस हरकत को देख अचम्भित हैं. पार्टी के स्थानीय पदाधिकारीगण इस विवाद से पल्ला झाड़ते हुए कहते हैं कि पार्टी का इस मामले से कुछ लेना-देना नहीं है. यह उन दोनों के बीच का व्यक्तिगत मामला है. वहीं आमजन पार्टी द्वारा इस मामले में कंधा झाड़ लेने की प्रवृत्ति को पचा नहीं पा रहे हैं.

भाजपा के राष्ट्रीय मंत्री एवं बिहार विधान परिषद में विरोधी दल के मुख्य सचेतक रजनीश कुमार और भाजपा के बेगूसराय सांसद डॉ. भोला सिंह एक दूसरे के पंख कतरकर राजनीतिक शक्ति विहीन करने पर तुले हैं. डॉ. भोला सिंह 50 वर्षों से राजनीतिक जीवन में हैं. वे भाकपा, कांग्रेस एवं राजद, जिस दल में भी रहे, वहां उन्होंने अपनी रौब, प्रतिष्ठा, पार्टी के प्रति समर्पण एवं जनसेवा की भावना से काम किया और राजनीति में अपनी खास पहचान कायम की. वे कई बार विधायक और बिहार सरकार में मंत्री भी रहे. बिहार विधान सभा के उपाध्यक्ष रहे. नवादा से भाजपा के सांसद रहे. सम्प्रति वे बेगूसराय से भाजपा के सांसद हैं. अपने राजनीतिक जीवन में डॉ. भोला सिंह ने यह सबक हमेशा याद रखा कि भविष्य में चुनौती देनेवाले को कभी पनपने नहीं दो.

दूसरी ओर रजनीश कुमार भाजपा के युवा तुर्क एवं तेज-तर्रार नेता माने जाते हैं. बिहार विधान परिषद के त्रिस्तरीय पंचायती राज चुनाव में लगातार दूसरी बार बेगूसराय-खगड़िया क्षेत्र से विधान पार्षद निर्वाचित हुए हैं. गत लोक सभा चुनाव में ही डॉ. भोला सिंह एवं रजनीश कुमार के बीच शह-मात का खेल शुरू हो गया था, लेकिन राजनीति के चाणक्य व जननायक डॉ. भोला सिंह चुनाव जीतकर लोक सभा पहुंच गए. यद्यपि उन्हें विजयी बनाने में और कई कारक शामिल थे.

दूसरी ओर राजनीश कुमार ने अपने दमखम, योग्यता, कर्मठता, क्षमता एवं पार्टी के प्रति समर्पण की भावना से लबरेज रहते हुए भाजपा में अपनी गहरी पैठ कायम की. उनके इन गुणों से कायल होकर पार्टी के

डॉ. भोला सिंह

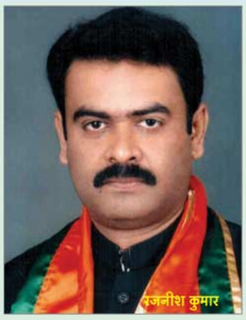

रजनीश कुमार

राष्ट्रीय अध्यक्ष अमित शाह ने अपनी कार्यकारिणी टीम में शामिल करते हुए उन्हें राष्ट्रीय मंत्री बनाया. सम्प्रति वे सिक्किम राज्य के पार्टी प्रभारी हैं. ज्ञातव्य है कि डॉ. भोला सिंह एवं रजनीश कुमार दोनों भाजपा के मूल कैडर नहीं हैं. डॉ. भोला सिंह ने भाकपा, कांग्रेस एवं राजद के रास्ते भाजपा में प्रवेश किया तो वहीं रजनीश कुमार राजद के रास्ते भाजपा में आए.

भाजपा ने 2019 के लोक सभा चुनावी मोड में काम करना शुरू कर दिया है. अधिक उम्र होने के नाते डॉ. भोला सिंह को लग रहा है कि पार्टी आलाकमान उन्हें अपना प्रत्याशी नहीं बनाएगी. दूसरी ओर रजनीश कुमार पार्टी प्रत्याशी के प्रबल दावेदारों में शामिल हैं. यह बात डॉ. भोला सिंह पचा नहीं पा रहे हैं. पुरानी खुन्नस के चलते वे चाहते हैं कि अगर उन्हें प्रत्याशी नहीं बनाया गया तो रजनीश कुमार को भी प्रत्याशी नहीं बनने देंगे.

इस आशंका को एक तात्कालिक घटना से और बल मिला है. 30 अप्रैल 2017 को बेगूसराय जिले के बखरी प्रखंड के परिहारा गांव निवासी पार्टी कार्यकर्ता समीर कुमार देव की हत्या हो गई थी. समीर कुमार देव का पूरा परिवार जनसंघ से और वर्तमान में भाजपा से जुड़ा है. समीर के पिता की भी हत्या हुई थी. समीर के बड़े भाई अनिल कुमार देव पर भी जानलेवा हमला हुआ था, जिसमें उन्हें अपना एक पैर गंवाना पड़ा था. समीर कुमार देव की हत्या के मामले ने भाजपा के दो दिग्गजों के बीच भूचाल ला दिया. प्राथमिकी में 8 व्यक्तियों को नामजद किया गया है, जिसमें रजनीश कुमार को भी साजिशकर्ता बनाया गया है. बताया जाता है कि गत लोक सभा एवं विधानसभा चुनाव में अनिल कुमार देव एवं समीर कुमार देव डॉ. भोला सिंह के साथ थे, जो रजनीश कुमार को पसन्द नहीं था. इस हत्याकांड में रजनीश कुमार का नाम आने पर उन्हें संदेह हुआ कि डॉ. भोला सिंह ने उनकी राजनीतिक हत्या कराने के उद्देश्य से प्राथमिकी में नाम डलवाया है. इसके बाद बयानबाजी का दौर शुरू होता है. डॉ. भोला सिंह ने आरोप लगाया कि रजनीश कुमार एक आपराधिक चरित्र के व्यक्ति हैं. वे अपराधियों को संरक्षण देते हैं और दर्जनों आपराधिक मामले में वांछित हैं. राजनीतिक कारणों से योजनाबद्ध ढंग से साजिश रचकर समीर कुमार देव की हत्या कराई गई है. इसके बाद रजनीश कुमार ने भी बयान जारी कर कहा कि डॉ. भोला सिंह ने मुझपर जो आरोप लगाए हैं, उसका ब्यौरा और साक्ष्य दें, अन्यथा उनके विरुद्ध मानहानि का मुकदमा किया जाएगा. उन्होंने कहा कि डॉ. भोला सिंह की यह फितरत रही है कि वे जिस दल में रहते हैं, उसकी जड़ खोदने का काम करते हैं. उन्होंने भाकपा, कांग्रेस और राजद में रहते हुए उसकी जड़ खोदने का काम किया और आखिरकार उन्हें पार्टी से बाहर होना पड़ा. अब भाजपा में रहते हुए इसकी भी जड़ खोदने पर तुले हुए हैं.

इस बीच समीर कुमार देव की हत्या के आरोपी जयशंकर यादव के पिता 70 वर्षीय रामचन्द्र यादव की हत्या हो चुकी है. दिलचस्प पहलू यह है कि हत्या का आरोपी मनोज तांती भी भाजपा का कार्यकर्ता है. इस हत्या की ओट में डॉ. भोला सिंह एवं रजनीश कुमार दोनों की निगाहें 2019 के लोक सभा चुनाव में प्रत्याशी बनाए जाने पर टिकी हैं. डॉ. भोला सिंह चाहते हैं कि अगर वे नहीं तो रजनीश भी नहीं. हत्या का यह मामला भाजपा कार्यकर्ता से जुड़ा है, इसके बावजूद पार्टी आलाकमान इस मामले को सुलझाने में कोई रुचि नहीं ले रहा है. इससे पार्टी के कार्यकर्ता हतप्रभ हैं, जिसका प्रभाव लोक सभा चुनाव पर पड़ सकता है.■

गर्मी और पेट की समस्या
ariskon Pharma Pvt. Ltd.
An ISO 9001 : 2008 Certified Co.

डॉ. सरोज कुमार सिंह, (MBBS)
फिजिशियन, टेकारी, गया

डॉ सरोज कुमार सिंह जिनका टेकारी मेन रोड में क्लिनिक है ने गर्मी के विषय पर लोगों को टिप्स दिए और बताया कि पाचन संबंधी समस्याएं गर्मियों के दौरान बहुत ज्यादा बढ़ जाती हैं। इसके कारण कुछ लोगों को भूख कम हो जाती है। खाने में अनियमितता बरतने के कारण डायरिया और डिहाइड्रेशन की समस्या होने की संभावना अधिक रहती है। इस मौसम में पाचन तंत्र कमजोर हो जाता है जिससे तला भुना और बहुत ज्यादा मसालेदार खाने से अपच और पेट की समस्या होने लगती है। गर्मियों के दौरान आपका पाचन तंत्र सही तरीके से काम नहीं करता और बहुत ज्यादा खाना आपके पाचन तंत्र को नुकसान पहुंचा सकता है। इसलिए गर्मियों की पाचन संबंधी समस्याओं से बचने के लिए भूख से थोड़ा कम ही खायें। एक साथ इकट्ठा न खाकर थोड़ी-थोड़ी देर में खायें। इससे पाचन क्रिया सही ढंग से काम करेगी और आपको जल्दी भूख भी नहीं लगेगी। इस समय हरी पत्तेदार सब्जियां और ताजे फल खाइये, जो कि आसानी से पच जाए। और आपको हाइड्रेट रखने में भी मदद करेगें ☞ तले और मसालेदार आहार से बचें ☞ इन महीनों में खाना कम खायें ☞ ज्यादा से ज्यादा तरल पदार्थ का सेवन करें। ☞ जूसी फलों का अत्यधिक सेवन करें। ☞ फाइबर युक्त भोजन करें ☞ दही और मठ्ठे का खाने में खूब प्रयोग करें ☞ मसाले और जड़ी बूटियों को शामिल करें। ☞ इन दिनों नमक चीनी का के मिश्रण का घोल का प्रयोग भी अधिक से अधिक करें। इनके अलावा डॉ. सरोज ने बाहरी खाने की वस्तुओं से परहेज करने को कहा और कहा कि पानी हमेशा शुद्ध पियें और अधिक से अधिक पानी पियें। साथ ही बताय कि इन दिनों लालमी, तारबूज, ककड़ी खिरा आदि जैसे फलों को खूब खायें रोटी चावल से अधिक इन चीजों का प्रयोग करें। ■

Carbo - XT Drops Susp.
Ferrous Ascorbate 100 mg + Folic Acid 1.5 mg + Vitamine B5 mcg Tab.
A Colic Drops.
Simethocone Emulsion, Dil Oil Fennel Oil
Siliplex Syp.
Silymarin, vitamin B Complex Calcuium & Lactic Acid Bacillus
Oflogyl-OZ Susp. (60 ml)
Ofloxacine 100 mg & Omindazole 125 mg
Acoba Syp.
Methylocobalamine, Lycopene, Multivitamine Multimineral & Antioxident

भारती
NOKSIRA Pharma Pvt.Ltd.
A Division of AriskonPharma
विशेष परिस्थिति में कुशल चिकित्सक से परामर्श अवश्य लें

आत्म कल्याण केन्द्र
Email:aatmakalyankendra@gmail.com
www.acharyasudarshanjimaharaj.org
आचार्य सुदर्शन जी महाराज के संदेश

संसार के समस्त जीवों के ऊपर अंतरिक्ष से प्राण ऊर्जा की वर्षा होती रहती है जो भाग्शाली, विवेकशील व्यक्ति होता है, वे अपने मुख को ऊपर करके इस प्राण ऊर्जा को पीते रहते हैं। और अपने जीवन को सबल बनाते हैं। हमारे जीवन के चारों ओर प्रकृति फैली हई है। हरे भरे पेड़ नदी झरना, पहाड़, बहती हुई हवाएं हरे-हरे घास एवं छोटे छोटे पौधे इन सबसे हमें प्राण ऊंजा मिलती रहती है। वृक्षों और पहाड़ियों के मध्य भ्रमण करना चांदनी रात में खुले बदन बैठना, लाल सूर्य के दर्शन करना, हरी घास पर पैदल चलना, नदी झरनों में स्नान करना आदि ऐसे कई उपाय हैं, जिनसे जीवनशक्ति बढ़ायी जा सकती है। मनुष्य जितना अधिक प्रकृति की गोद में खेलता है, वह उतना ही अधिक स्वस्थ्य रह पाता है। ध्यान रहे कि जीवन-ऊर्जा बढ़ाने के लिए हमें वृक्षों के नीचे बैठना चाहिए। विशेषकर गायों के बीच मे रहें और गोपाल कृष्ण की तरह पशु उर्जा से लाभ उठाएँ। इतना ही नहीं, संतों के सम्पर्क में रहने से भी ऊर्जा मिलती है, उसे सात्विक ऊर्जा कहते हैं। इस ऊर्जा से जीवन में सात्विक वृत जन्म लेती है। आज का मनुष्य अशांति, भय और तनाव में जी रहा है। इस कारण उसका सारा जीवन नर्क बनता जा रहा है। जीवन हँसने और मुस्कराने के लिए है, उसको तनाव और चिंता में नष्ट करना समुचित नहीं है। इस संदर्भ में यह भी ध्यान रहे कि तनाव और चिंता मनुष्य स्वयं अर्जित करता है और उसके विषदंत से घायल होकर कराहने लगता है। यही कारण है कि जो जितना बड़ा आदमी है, वह उतना ही अधिक चिंतित दिखता है। ■

CRM
TMT BAR

ISO 9001 - 2000 Certified Co.
IS:1786:2008
CM/L-5746178
Fe-500
मुख्य खूबियाँ
• बचत
• मजबूती
• शानदार फिनीश
Mfg. : CITY ROLLING MILLS PVT. LTD., PATNA
HELPLINE : 0612-2216770

www.chauthiduniya.com
चौथी दुनिया

विरासत को सहेजने का वक्त

अनंत विजय

हिंदी की विपुल साहित्यक विरासत पर अगर नजर डालें, तो इस वक्त उसको संरक्षित करने की बेहद आवश्कता दिखाई देती है. संरक्षण के साथ-साथ जरूरत इस बात की भी है कि हिंदी साहित्य को समृद्ध करने वाली रचनाओं को नई पीढ़ी तक पहुंचाने का काम भी किया जाए. आज पूरे देश में हिंदी के पक्ष-विपक्ष में बयानबाजी हो रही है, लेकिन अगर हिंदी के लिए कुछ ठोस करना है, तो उसकी विरासत को समकालीन बनाने का यत्न किया जाना बेहद जरूरी है. हिंदी के व्याकरण को लेकर बहुत सारी बातें होती हैं. हिंदी में शब्दों की युग्म-रचना को लेकर भी बहसें होती रहती हैं. इन सारे प्रश्नों का जिस किताब में उत्तर है, वो पुस्तक अब लगभग अप्राप्य है. पंडित किशोरीदास वाजपेयी की किताब 'हिन्दी शब्दानुशासन' अहम है, लेकिन वो अब मिलती नहीं है. अगर बहुत जतन के बाद आप इस पुस्तक तक पहुंच भी गए, तो इसकी छपाई के अक्षर काफी पुराने हैं, लिहाजा आपको पढ़ने में कठिनाई होगी. नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी से प्रकाशित इस पुस्तक के पुनर्प्रकाशन और पाठकों तक इसकी जानकारी पहुंचाने की कोशिश की जानी चाहिए. इसी तरह से अगर आप हमारे वेदों को देखें, तो वे उपलब्ध तो हैं, लेकिन उनको समकालीन बनाने की आवश्यकता है. प्रस्तुतिकरण में समकालीन, छपाई में बेहतर अक्षरों का प्रयोग और इन सबसे अलग जो हिंदी में इसका अनुवाद छपा है, उसको फिर से देखकर आज के जमाने की हिंदी की अनुसार करना होगा, ताकि हमारी आज की युवा पीढ़ी उसको पढ़ समझ सके.

इसी तरह से अगर हम विचार करें, तो हमारे कई ऐसे कवि-लेखक हैं, जिनके बारे में, जिनकी रचनाओं के बारे में युवा पीढ़ी को बताने के लिए काम करना होगा. अपनी परंपरा और विरासत तो सहेजकर ही उसकी मजबूत जमीन पर बुलंद इमारत खड़ी की जा सकती है.

अभी हाल ही में केंद्रीय हिंदी निदेशालय के सहयोग से अयोध्या में जगन्नाथदास रत्नाकर पर दो दिन की राष्ट्रीय संगोष्ठी हुई. इस गोष्ठी में जगन्नाथदास रत्नाकर और हिंदी साहित्य में उनके योगदान पर गहन चर्चा हुई. जगन्नाथदास रत्नाकर को ज्यादातर लोग रीतिकालीन कवि और उद्धव शतक के रचयिता के तौर पर जानते हैं, परंतु उनका रचना संसार काफी व्यापक है. कहा जाता है कि उन्होंने जयपुर राजघराने से लेकर बिहारी सतसई का भाष्य प्रस्तुत किया. कुछ लोगों का तो ये भी मानना है कि सूर सागर के बड़े हिस्से का संपादन और संकलन उन्होंने ही किया था. उद्धव शतक के रचयिता कविवर जगन्नाथदास रत्नाकर की कर्मभूमि अयोध्या है. वे करीब तीन दशकों तक अयोध्या में रहे और वहीं रहकर उन्होंने उद्धव शतक, गंगालहरी, गंगावतरण, बिहारी सतसई की टीका जैसे कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना

हिंदी में लंबे समय तक परंपरा को तोड़ने-फोड़ने का काम किया गया और इस तोड़ फोड़ का नुकसान ये हुआ कि हम अपनी विरासत से दूर होते चले गए. परंपरा का शोर मचाने वाले तो समय के साथ साहित्य में हाशिए पर चले गए, लेकिन जबतक शोर मचाते रहे, तबतक साहित्य का बहुत नुकसान कर दिया. कुछ कवियों को आगे बढ़ा दिया, तो कुछ के विचारों में कमजोरी पकड़कर उसके बरक्स किसी और कवि को खड़ा करने की कोशिश की गई. मिसाल के तौर पर, जिस तरह से आलोचकों में गोस्वामी तुलसीदास और कबीर को श्रेष्ठ साबित करने की होड़ दिखाई देती है, उसको देखा जा सकता है. कबीर को क्रांतिकारी और तुलसी को रूढ़िवादी करार देकर सालों तक तुलसी के कवि रूप पर विचार नहीं किया गया या कह सकते हैं कि तुलसी को सायास हाशिए पर डालने की कोशिश की गई. तुलसी को वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थक और कबीर को रूढ़ियों पर प्रहार करने वाला रचनाकार बताया जाता रहा.

की. अच्छी बात ये रही कि इस गोष्ठी में केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने रत्नाकर के बिखरे साहित्य को सहेजने एवं पुनर्प्रकाशन का ऐलान किया. जगन्नाथदास रत्नाकर के बारे में ये तथ्य अभी तक सामने है कि वे आजादी पूर्व उन्नीस सौ दो में अयोध्या के राजा के निजी सचिव होकर आए थे और वहां रहते हुए उन्होंने साहित्य के लिए बेहद अहम कार्य किया. उनकी रचनाएं काल की सीमाओ को तोड़ते हुए आज भी अपने बूते पर जिंदा हैं. जरूरत उसको विशाल हिंदी पाठक वर्ग तक पहुंचाने की है.

टी एस इलियट ने कहा था- उन कवियों के लिए ऐतिहासिक बोध लगभग अनिवार्य है, जो अपनी उम्र के पच्चीस वर्ष बाद भी कवि बने रहना चाहते हैं. इस ऐतिहासिक बोध का मतलब है एक परिप्रेक्ष्य, जो अतीत की अतीतता से नहीं, उसकी वर्तमानता से भी संबद्ध हो. ऐतिहासिक बोध व्यक्ति को इसके लिए बाध्य करता है कि वो अपनी अस्थियों में सिर्फ अपनी पीढ़ी को लेकर ही ना लिखे, बल्कि इस अनुभूति के साथ लिखे कि होमर से लेकर आजतक के यूरोप का संपूर्ण साहित्य उसमें अंतर्निहित हैं. इसमें उसके अपने देश के साहित्य का समांतर अस्तित्व होगा और वह समांतर क्रम में ही रचना करेगा. कवि जगगनाथदास रत्नाकर में ये गुण है.

हिंदी में लंबे समय तक परंपरा को तोड़ने-फोड़ने का काम किया गया और इस तोड़ फोड़ का नुकसान ये हुआ कि हम अपनी विरासत से दूर होते चले गए. परंपरा का शोर मचाने वाले तो समय के साथ साहित्य में हाशिए पर चले गए, लेकिन जबतक शोर मचाते रहे, तबतक साहित्य का बहुत नुकसान कर दिया. कुछ कवियों को आगे बढ़ा दिया, तो कुछ के विचारों में कमजोरी पकड़कर उसके बरक्स किसी और कवि को खड़ा करने की कोशिश की गई. मिसाल के तौर पर, जिस तरह से आलोचकों में गोस्वामी तुलसीदास और कबीर को श्रेष्ठ साबित करने की होड़ दिखाई देती है, उसको देखा जा सकता है. कबीर को क्रांतिकारी और तुलसी को रूढ़िवादी करार देकर सालों तक तुलसी के कवि रूप पर विचार नहीं किया गया या कह सकते हैं कि तुलसी को सायास हाशिए पर डालने की कोशिश की गई. तुलसी को वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थक और कबीर को रूढ़ियों पर प्रहार करने वाला रचनाकार बताया जाता रहा. यह तो तुलसी के कवित्व की ताकत थी कि जिसके बूते पर वो पाठकों के मानस पर पीढ़ी दर पीढ़ी बने रहे. सवाल तो उसपर भी खड़े होने चाहिए कि कविता की कसौटी कवि का विचार होना चाहिए या उसकी विचारधारा? हमारा तो मानना है कि कविता को कविता की प्रचलित कसौटी पर ही कसा जाना चाहिए. कविता को विचार और विचारधारा की कसौटी पर कसना कवि के साथ अन्याय करने जैसा है. हिंदी में विचारधारा के आलोचकों ने जब कवियों का विचार और धारा के आधार पर मूल्यांकन शुरू किया, तो इस तरह की गड़बड़ियां होने लगीं. जगन्नाथदास रत्नाकर से लेकर अन्य रीतिकालीन और भक्तिकालीन कवि हाशिए पर धकेले जाने लगे. अब वक्त आ गया है कि एक बार फिर से हम अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों पर गंभीरता से बगैर किसी वैचारिक पूर्वग्रह के विचार करें और मूल्यांकन का आधार साहित्यक हो. सरकारें भी हिंदी का बहुत शोर मचा रही हैं, लेकिन अगर वो सचमुच हिंदी को लेकर गंभीर हैं, तो उनको प्रतीकात्मकता छोड़कर ठोस कार्य प्रारंभ करना होगा. केंद्रीय हिंदी निदेशालय के अलावा भी भारत सरकार के कई संस्थान हैं, जो इस तरह के काम को अपने हाथ में ले सकते हैं. कई संस्थाएं तो पुरानी कृतियों के संरक्षण और संवर्धन के लिए हैं. इस बिखरते हुए संस्थानों को साथ आकर, गंभीरता से, लोगों को चिन्हित कर इस काम को करवाना होगा. ■

anant.ibn@gmail.com

सूचना का अधिकार
RIGHT TO INFORMATION

आरटीआई और तीसरा पक्ष

न्यायालय की अवमानना और संसदीय विशेषाधिकार के नाम पर लोक सूचना अधिकारी सूचना न देने के लिए हज़ारों बहाने बनाते हैं और सूचना अधिकार क़ानून की धारा 8 का ग़लत इस्तेमाल करते हैं. हम इस कॉलम के ज़रिए ये बता रहे हैं कि इस धारा को आवेदक यदि अच्छी तरह समझ जाएं, तो फिर लोक सूचना अधिकारी ग़लत बहाने नहीं बना सकेगा. इस अंक में हम आपको तीसरे पक्ष के बारे में बता रहे हैं. कई बार जब आप किसी सरकारी विभाग में आरटीआई आवेदन देते हैं, तो जवाब में आपको बताया जाता है कि अमुक सूचना तीसरे पक्ष से जुड़ी है, इसलिए आपको नहीं दी जा सकती या मामला अदालत में विचाराधीन है, इसलिए सूचना का प्रकटीकरण नहीं किया जा सकता है या फिर अमुक सूचना को सार्वजनिक करना देशहित में नहीं है अथवा सूचना को सार्वजनिक करने से देश की आंतरिक सुरक्षा को ख़तरा हो सकता है. कई बार ऐसा लगता है कि लोक सूचना अधिकारी सूचना न देने के लिए बहानेबाज़ी कर रहा है और कई बार सचमुच ऐसा होता भी है. इसके लिए ज़रूरी है कि हमारे पास आरटीआई क़ानून की उन धाराओं की विस्तृत जानकारी होनी चाहिए, जो सूचना को सार्वजनिक किए जाने से रोकती हैं. इससे फायदा ये होगा कि हम आसानी से तय कर सकेंगे कि लोक सूचना अधिकारी कहीं उन धाराओं का ग़लत इस्तेमाल तो नहीं कर रहा है. सूचना अधिकार क़ानून के तहत जो व्यक्ति सूचना मांगता है, वो प्रथम पक्षकार होता है. जिस विभाग या लोक प्राधिकारी से सूचना मांगी जाती है, वो द्वितीय पक्षकार होता है.

यदि आवेदक द्वारा मांगी जा रही सूचना आवेदक से सीधे-सीधे संबंधित न होकर किसी अन्य व्यक्ति से संबंधित हो तो वह अन्य व्यक्ति ही तृतीय पक्ष कहलाता है. तीसरे पक्ष से संबंधित व्यक्ति की सूचना को तृतीय पक्ष की सूचना कहा जाता है. सूचना अधिकार क़ानून में तृतीय पक्ष की गोपनीयता को संरक्षित करने का प्रावधान है. क़ानून की धारा 11 के अनुसार, ऐसी सूचनाएं, जो किसी दूसरे व्यक्ति से संबंधित होती हैं, उन्हें आवेदक को दिए जाने से पूर्व तीसरे पक्षकार की इजाज़त लेनी पड़ती है. ऐसे मामलों में लोक सूचना अधिकारी की ज़िम्मेदारी होती है कि वह आवेदन प्राप्त होने के पांच दिनों के भीतर पक्षकार को इस आशय की सूचना देगा और अगले 10 दिनों के भीतर सूचना जारी करने की सहमति या असहमति प्राप्त करेगा.

इस तरह की सूचनाओं में आम तौर पर किसी प्रकार की परेशानी नहीं होती. लेकिन यदि आवेदक द्वारा मांगी जा रही सूचना आवेदक से सीधे-सीधे संबंधित न होकर किसी अन्य व्यक्ति से संबंधित हो, तो वो अन्य व्यक्ति ही तृतीय पक्ष कहलाता है. तीसरे पक्ष से संबंधित व्यक्ति की सूचना को तृतीय पक्ष की सूचना कहा जाता है. सूचना अधिकार क़ानून में तृतीय पक्ष की गोपनीयता को संरक्षित करने का प्रावधान है. क़ानून की धारा 11 के अनुसार, ऐसी सूचनाएं, जो किसी दूसरे व्यक्ति से संबंधित होती हैं, उन्हें आवेदक को दिए जाने से पूर्व तीसरे पक्षकार की इजाज़त लेनी पड़ती है. ऐसे मामलों में लोक सूचना अधिकारी की ज़िम्मेदारी होती है कि वो आवेदन प्राप्त होने के पांच दिनों के भीतर तीसरे पक्षकार को इस आशय की सूचना देगा और अगले 10 दिनों के भीतर सूचना जारी करने की सहमति या असहमति प्राप्त करेगा. लेकिन क़ानून में ये भी स्पष्ट किया गया है कि ऐसी सूचना, जिससे सामाजिक हित सधता हो या तीसरे पक्ष की सूचना को जारी करने से होने वाली संभावित क्षति लोकहित से ज़्यादा बड़ी न हो, तो उस दशा में मांगी गई सूचना दी जा सकती है. क़ानून में लोक सूचना अधिकारी को के पास ये एक महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारी होती है कि वो तृतीय पक्षकार एवं लोकहित को अच्छी तरह समझ-बूझकर मांगी गई सूचना जारी करे. कई मामलों में देखने में आया है कि लोक सूचना अधिकारी व्यक्तिगत स्वार्थ या विभागीय दबाव के चलते तृतीय पक्ष से संबंधित सूचनाओं को जारी करने से रोकने के लिए धारा 11 का ग़लत इस्तेमाल कर रहे हैं. ऐसे में सूचना आयुक्तों की ज़िम्मेदारी काफी बढ़ जाती है कि वो तृतीय पक्ष से संबंधित सूचनाओं को जारी करने में लोकहित का विशेष ख्याल रखें, जिससे क़ानून की मूल भावना, पारदर्शिता और जवाबदेयता बची रहे. यहां हम आपको तीसरे पक्ष से संबंधित कुछ अहम फैसलों के बारे में भी बता रहे हैं. एक करदाता द्वारा दाखिल किए गए आयकर रिटर्न की सूचना भी तृतीय पक्ष से संबंधित मानी गई है. सूचना आयोग ने एक मामले की सुनवाई के दौरान आयकर रिटर्न की प्रतिलिपि नहीं दिलाई. आयोग का मानना था कि करदाता द्वारा ये सूचना विभाग को विश्वास आधारित संबंधों के तहत दी जाती है, जिसे सार्वजनिक नहीं किया जा सकता. लेकिन एक अन्य मामले में आयोग ने आयकर एसेसमेंट की जानकारी सार्वजनिक करने में कोई आपत्ति नहीं जताई. इससे समझा जा सकता है कि सूचना दी जाए या नहीं, इसका सारा दारोमदार सूचना आयुक्त पर है. एक दंपत्ति ने सूचना अधिकार क़ानून के तहत एक डॉक्टर के शैक्षणिक प्रमाणपत्रों की प्रतिलिपि मांगी, जिसे मेडिकल संस्थान ने देने से मना कर दिया. संस्थान का मानना था कि ये किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत सूचना है, जिसे दिए जाने से उसकी निजता का हनन होता है. आयोग में सुनवाई के दौरान दंपत्ति ने ये सूचना लोकहित में जारी करने की दलील दी. उनका कहना था कि जिस डॉक्टर के शैक्षणिक दस्तावेज़ मांगे गए हैं, उसने उनके पुत्र का इलाज किया था और इलाज के दौरान इनके पुत्र की मृत्यु हो गई थी. उन्हें संदेह था कि डॉक्टर के दस्तावेज़ फर्ज़ी हैं. आयोग ने भी इस दलील पर सहमति जताई और सूचना जनहित में जारी करने के आदेश दिए. ■

अगर आपके पास आरटीआई से संबंधित कोई ख़बर या सवाल है, तो हमें इमेल करें: rti@chauthiduniya.com

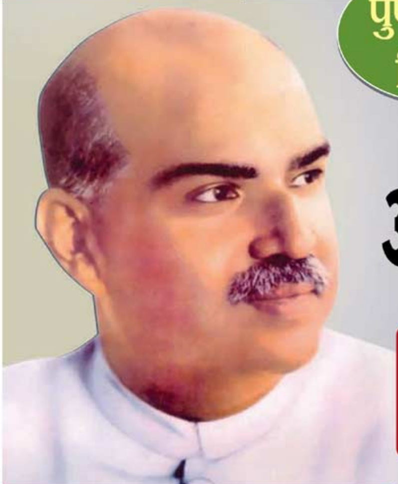

पुण्यतिथि विशेष

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी

अखंड भारत के पैरोकार थे

आजादी के बाद जब पहली सरकार का गठन हुआ, तो डॉ. मुखर्जी पंडित जवाहरलाल नेहरू की कैबिनेट में उद्योग और आपूर्ति मंत्री बने. उनकी विद्वता और राजनीतिक समझ ने जल्द ही उन्हें सरकार में लोकप्रिय बना दिया. हालांकि उनकी राष्ट्रवादी सोच के कारण नेहरू की कैबिनेट के कई सदस्यों से उनका मतभेद बना रहा. इसी बीच प्रधानमंत्री नेहरू और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकत अली के बीच एक समझौता हुआ. राष्ट्रीय हितों की अपनी प्रतिबद्धता को सर्वोपरी मानते हुए उन्होंने इस समझौते के विरोध में 6 अप्रैल 1950 को मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया. इसके बाद वे राष्ट्रवादी नेताओं को एकजुट करने में लग गए और फिर 21 अक्टूबर 1951 को राष्ट्रीय जनसंघ की स्थापना की. 1951-52 के आम चुनावों में राष्ट्रीय जनसंघ भी उतरा और इसके 3 सांसद चुने गए, जिनमें एक डॉ. मुखर्जी भी थे.

जन्म: 06 जुलाई 1901, मृत्यु: 23 जून 1953

चौथी दुनिया ब्यूरो

आजादी के बाद जिन चंद लोगों ने भारत के भविष्य को संवारने के लिए अपना जीवन कुर्बान कर दिया, उनमें से एक डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी भी हैं. उन्हें प्रखर राष्ट्रवादी नेता के रूप में जाना जाता है. वे न सिर्फ एक राजनेता बल्कि शिक्षाविद और चिन्तक भी थे. वकालत के पेशे से अपने सार्वजनिक जीवन की शुरुआत करने वाले डॉ. मुखर्जी को कलकत्ता विश्वविद्यालय का सबसे कम उम्र का कुलपति बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. आजाद भारत की पहली कैबिनेट के सदस्य रहे डॉ. मुखर्जी वर्तमान भारत की सत्ताधारी पार्टी भाजपा की मातृसंस्था जनसंघ के संस्थापक थे. कश्मीर को पूरी तरह से अखंड भारत का हिस्सा बनाने के लिए एक निशान, एक विधान, एक प्रधान का नारा देने वाले डॉ. मुखर्जी, इस नारे पर अमल के प्रयास में ही दिवंगत हो गए. कश्मीर जाने के लिए लगने वाले परमीट के विरोध में की गई कश्मीर यात्रा के दौरान डॉ. मुखर्जी गिरफ्तार कर लिए गए. 40 दिनों तक जेल में रहने के बाद 23 जून 1953 को रहस्यमय परिस्थितियों में उनकी मृत्यु हो गई.

आजादी की लड़ाई के कई क्रांतिकारियों की जन्मभूमि रही बंगाल की राजधानी कलकत्ता के बहुत ही प्रतिष्ठित और संभ्रांत परिवार में 6 जुलाई 1901 को डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी का जन्म हुआ था. उनके पिता का नाम सर आशुतोष मुखर्जी और माता का नाम जोगमाया देवी था. सर आशुतोष मुखर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति थे. शिक्षाविद पिता की विरासत को डॉ. मुखर्जी ने बखूबी आगे बढ़ाया. सन 1917 में मैट्रिक और 1921 में प्रथम स्थान के साथ बीए की परीक्षा पास करने के बाद उन्होंने बंगाली विषय में प्रथम श्रेणी के साथ ही एमए उत्तीर्ण किया. इसके बाद उन्होंने 1924 में क़ानून की पढ़ाई पूरी की. 1924 में ही पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने कलकत्ता हाई कोर्ट में वकालत के लिए पंजीकरण कराया. 1926 में वे इंग्लैंड चले गए, जहां से 1927 में बैरिस्टर बन कर वापस भारत आए. डॉ. मुखर्जी 1934 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त किए गए. वे इस पद पर पहुंचने वाले सबसे कम उम्र के व्यक्ति थे.

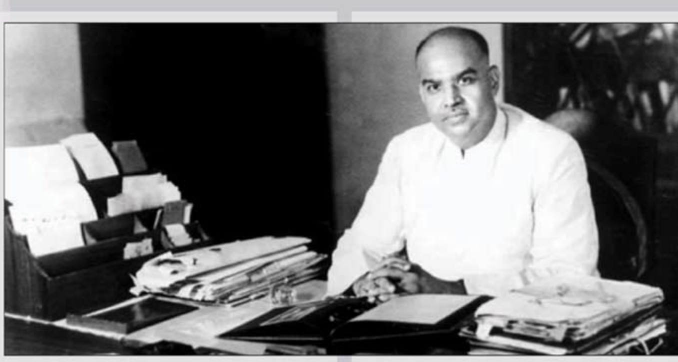

इससे पहले 1929 में मुखर्जी कांग्रेस पार्टी के टिकट पर बंगाल विधान परिषद के सदस्य बने. इसी के साथ उनका राजनीतिक जीवन शुरू हुआ. हालांकि कांग्रेस द्वारा विधान परिषद का बहिष्कार करने पर उन्होंने इस्तीफा दे दिया. लेकिन फिर स्वतंत्र उम्मीदवार के तौर पर चुनाव लड़े और चुने गए. 1937 से 1941 के बीच जब राज्य में कृषक प्रजा पार्टी और मुस्लिम लीग की साझा सरकार थी, तब वे विपक्ष के नेता थे. इसके बाद 1941 फजलुल हक़ के नेतृत्व में बनी प्रगतिशील सरकार में डॉ. मुखर्जी राज्य के वित्त मंत्री बने. हालांकि 1 साल बाद ही उन्होंने इस पद से भी इस्तीफ़ा दे दिया. इसके बाद वे हिन्दू महासभा में शामिल हो गए और 1944 में हिन्दू महासभा के अध्यक्ष भी बने. उस समय धर्म के आधार पर देश के विभाजन की चर्चा जोर-शोर से चल रही थी. डॉ. मुखर्जी इस विभाजन के कट्टर विरोधी थे. उन्होंने पाकिस्तान बनाने के लिए मुहम्मद अली जिन्ना और मुस्लिम लीग के प्रयासों को साम्प्रदायिकतावादी राजनीति करार दिया और इसका मुखरता से विरोध किया. डॉ. मुखर्जी का मानना था कि विभाजन सम्बंधी परिस्थिति ऐतिहासिक और सामाजिक कारणों से उत्पन्न हुई थी. वे इस आधार पर विभाजन का विरोध कर रहे थे कि हम सब एक हैं और हममें कोई अन्तर नहीं है. उनका मानना था कि हम सभी एक ही भाषा और संस्कृति से जुड़े हैं और हमारी एक ही विरासत है. हालांकि देश विभाजन के बाद के दंगों से उनकी इस मानसिकता में बदलाव आया. उन्होंने तब कहा भी था कि मुस्लिम लीग के सरकार वाले मुस्लिम बाहुल्य राज्य में हिन्दुओं का रहना असुरक्षित होगा. यही कारण भी था कि 1946 में जब बंगाल का विभाजन हो रहा था, तो डॉ. मुखर्जी उसके समर्थन में खड़े थे.

आजादी के बाद जब पहली सरकार का गठन हुआ, तो डॉ. मुखर्जी पंडित जवाहरलाल नेहरू की कैबिनेट में उद्योग और आपूर्ति मंत्री बने. उनकी विद्वता और राजनीतिक समझ ने जल्द ही उन्हें सरकार में लोकप्रिय बना दिया. हालांकि उनकी राष्ट्रवादी सोच के कारण नेहरू की कैबिनेट के कई सदस्यों से उनका मतभेद बना रहा. इसी बीच प्रधानमंत्री नेहरू और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकत अली के बीच एक समझौता हुआ. राष्ट्रीय हितों की अपनी प्रतिबद्धता को सर्वोपरी मानते हुए उन्होंने इस समझौते के विरोध में 6 अप्रैल 1950 को मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया. इसके बाद वे राष्ट्रवादी नेताओं को एकजुट करने में लग गए और फिर 21 अक्टूबर 1951 को राष्ट्रीय जनसंघ की स्थापना की. 1951-52 के आम चुनावों में राष्ट्रीय जनसंघ भी उतरा और इसके 3 सांसद चुने गए, जिनमें एक डॉ. मुखर्जी भी थे.

अपनी ही पार्टी से चुनकर संसद पहुंचने के बाद उन्होंने 32 लोकसभा और 10 राज्यसभा सांसदों के सहयोग से नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी का गठन किया. डॉ मुखर्जी भारत की अखंडता और कश्मीर के भारत में पूर्ण विलय के दृढ़ समर्थक थे. वे जम्मू कश्मीर के अलग झंडे, अलग निशान और अलग संविधान के विरोधी थे. उनको ये बात भी नागवार लगती थी कि वहां का मुख्यमंत्री (वजीरे-आज़म) अर्थात प्रधानमंत्री कहलाता था. अनुच्छेद 370 को उन्होंने भारत के बाल्कनीकरण की संज्ञा दी थी और इसे समाप्त करने के लिए संसद से सड़क तक लड़ाई लड़ी. कश्मीर के भारत विलय में अड़ंगा डालने वाले अनुच्छेद 370 के प्रावधानों को हटाने के लिए डॉ. मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ, हिन्दू महासभा और रामराज्य परिषद ने सत्याग्रह भी किया. उस समय कोई भी भारत सरकार से परमिट लिए बिना कश्मीर में दाखिल नहीं हो सकता था. इस प्रावधान के विरोध के लिए उन्होंने भारत सरकार से बिना परमिट लिए हुए जम्मू-कश्मीर जाने की योजना बनाई. 8 मई, 1953 को सुबह 6:30 बजे दिल्ली रेलवे स्टेशन से पैसेंजर ट्रेन में अपने समर्थकों के साथ सवार होकर वे पंजाब के रास्ते जम्मू के लिए निकल पड़े. ऐसी चर्चा थी कि उन्हें पंजाब में ही गिरफ्तार कर लिया जाएगा, लेकिन उनकी गिरफ्तारी हुई जम्मू-कश्मीर में. कहा जाता है कि डॉ. मुखर्जी को जम्मू-कश्मीर में गिरफ्तार करने की योजना इसलिए बनी, ताकि वे भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र से बाहर पहुंच जाएं. डॉ. मुखर्जी जैसे ही जम्मू-कश्मीर को जोड़ने वाली रावी नदी पर बने सड़क पुल पर पहुंचे, वहां पहले से खड़े कठुआ के पुलिस अधीक्षक ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया. डॉ. मुखर्जी को जिस जगह बंदी बनाया गया था, वो श्रीनगर शहर से काफी दूर, निशात बाग़ के करीब, एक छोटा सा उपजेल था. वहां उन्हें किसी से भी मिलने की मनाही थी. 22 जून की सुबह अचानक उनकी तबियत बिगड़ गई. इलाज के दौरान ही 23 जून को संदेहास्पद परिस्थितियों में उनकी मृत्यु हो गई. ■

सभ्यता के विनाश का संकेत है पानी की कमी

चौथी दुनिया ब्यूरो

ये बात हम वर्षों से कहते-सुनते आ रहे हैं कि पानी बचा तो बचेगी जिंदगी, लेकिन इसे व्यवहार रूप में उतारने को लेकर अब तक कोई खास प्रयास होता दिख नहीं रहा है. पानी की उपलब्धता में कमी न सिर्फ जीवन के लिए संकट का संकेत है, बल्कि पूरी सभ्यता के अस्तित्व के लिए भी खतरा है. क्योंकि पानी न सिर्फ जीवधारियों के लिए जरूरी है, बल्कि पेड़-पौधों के लिए भी नितांत आवश्यक है. पानी की समस्या दिन-ब-दिन एक विकराल रूप लेती जा रही है. पीने के पानी की गुणवत्ता तो पहले ही खत्म हो चुकी है. अब पानी की उपलब्धता पर भी संकट के बादल मंडराने लगे हैं. विश्व के कई देशों ने तो अपने यहां पानी की कमी को लेकर रेड अलर्ट जारी कर दिया है और बजाब्ता पानी की कम खपत वाले कानून भी बनाए गए हैं. लेकिन भारत में पानी की कमी की स्थिति बद से बदतर हो जाने के बाद भी केवल जन जागरूकता से ही काम चलाया जा रहा है. हालांकि वो जारूकता भी सफलता से कोसो दूर है. पानी की लगातार हो रही किल्लत को लेकर कई संस्थाओं के सर्वे और रिपोर्ट के बाद भी बर्बाद हो रहे पानी को बचाने की कोई मुहीम रंग लाती दिख नहीं रही है.

आ सकती है पानी आयात करने की नौबत

हाल ही में एक रिपोर्ट आई थी कि 2040 तक भारत में पीने के पानी की उपलब्धता नाम मात्र की रह जाएगी. उस रिपोर्ट में ये भी कहा गया था कि भविष्य में भारत को पानी आयात करने की नौबत से दोचार होना पड़ सकता है. हालांकि पानी का आयात भी संभव नहीं दिख रहा है, क्योंकि बाकी देशों को भी इस विकराल समस्या का शिकार होना पड़ सकता है. वर्ल्ड रिसोर्सेज इंस्टीट्युट की उसी रिपोर्ट में उन दस देशों का भी जिक्र था, जहां 2040 तक पानी के पूरी तरह से खत्म हो जाने की आशंका जताई जा रही है. भारत जैसे देश के लिहाज से ये रिपोर्ट एक बड़ी चिंता की बात है. गौरतलब है कि भारत में अभी वर्तमान में ही 32 फीसदी इलाकों में उपयोगी जल की उपलब्धता ज़रूरत से कम है. विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक केवल शहरी भारत में ही लगभग 10 करोड़ लोगों को पीने का साफ पानी मयस्सर नहीं होता. वहीं, देश के ग्रामीण क्षेत्रों की हालत और ज्यादा खराब है. करीब 66 से 80 फीसदी ग्रामीण इलाकों में पीने का साफ पानी शुद्धता के न्यूनतम मानकों से भी नीचे है. ऐसा भी नहीं है कि ये समस्या सिर्फ गर्मी के मौसम में सामने आती है. अब तो पूरे साल लोग पानी के लिए हहाकार करते देखे जा सकते हैं.

वे दस देश जहां 2040 तक नहीं बचेगा पानी

1.	कजाकिस्तान	6.	लीबिया
2.	मोरक्को	7.	जॉर्डन
3.	अजरबेजान	8.	इरान
4.	मैसोडोनिया	9.	किर्गिस्तान
5.	यमन	10.	लेबनान

जरूरी है जल संचयन और प्रबंधन

ऐसे कई उदाहरण देखने को मिल सकते हैं, जहां लोगों के आस-पास नदी-तालाब की उपलब्धता होने के बावजूद पीने के पानी की किल्लत है. हाल ही में खबर आई थी कि मध्य प्रदेश के सिमावर्ती जिला मुख्यालय झबुआ में दर्जनों तालाब हैं और शहर के करीब से नदी भी बहती है, लेकिन फिर भी यहां के पीने के पानी की कमी एक गंभीर समस्या है. इसका कारण ये है कि लोगों ने तालाबों और नदी के पानी के संचयन और प्रबंधन की तरफ ध्यान नहीं दिया. ऐसा भी नहीं है कि वर्षा में कमी के कारण पानी की समस्या उत्पन्न हो रही है. पिछले कई वर्षों से ये देखने को मिल रहा है कि मई-जून के महीने में जिन क्षेत्रों में पानी की किल्लत होती है, वहीं पर अगस्त-सितंबर में भारी बाढ़ भी आती है. इससे सहज ही समझा जा सकता है कि पीने के पानी में कमी का कारण जल संचयन, जल प्रबंधन और जल के उपयोग में अनुशासन की कमी है. जरूरत के अनुसार पानी का इस्तेमाल करें. ■

feedback@chauthiduniya.com

प्रभाष और राजमौली की नई फिल्म की प्लानिंग

दुनियाभर में बाहुबली-1 और बाहुबली-2 की रिकॉर्ड तोड़ सफलता के बाद एक बार फिर प्रभाष और फिल्म के निर्देशक एसएस राजमौली साथ फिल्म करने जा रहे हैं. इस तरह की ख़बरों से फिल्म जगत में हलचल है, क्योंकि ये दोनों मिल कर बॉक्स ऑफिस पर एक बहुत बड़ा धमाका करने की तैयारी में हैं. सूत्रों के अनुसार, छुट्टियां मना कर लौटे प्रभाष ने आते ही राजमौली से मुलाकात की और स्क्रिप्ट पर बात की. ये फिल्म हिंदी और तेलुगु में बनेगी. हालांकि इसके बारे में दोनों ने कुछ नहीं बताया है. चर्चा तो जोरो पर है कि प्रभाष को हिंदी फिल्मों में करण जौहर लांच कर सकते हैं. करण चाहते हैं कि प्रभाष को लेकर राजमौली ही हिंदी में फिल्म बनाएं. सब कुछ फाइनल होते ही राजमौली स्क्रिप्ट पर काम करना शुरू कर देंगे. फिलहाल तो प्रभाष की अगली फिल्म *साहो* ही चर्चा में है, जिसका बजट 150 करोड़ रुपए है. ■

ईद पर सलमान की ट्यूबलाइट से रौशन हुआ हिन्दुस्तान

"सूरज बड़जात्या निर्देशित मैंने प्यार किया मुख्य अभिनेता के तौर पर सलमान की पहली फिल्म थी. ये फिल्म ऑल टाइम ब्लॉकबस्टर रही. इसी के बाद सलमान खान ने एक के बाद एक हिट फिल्मों की लाइन लगा दी."

ट्यूबलाइट दो भाइयों की कहानी है. ये फिल्म 1962 के भारत-चीन युद्ध के बैकग्राउंड पर बेस्ड है. सलमान फिल्म में एक भारतीय व्यक्ति की भूमिका में हैं, जिसे चीन की एक लड़की से प्यार हो जाता है. इसमें कोई शक नहीं कि सलमान खान की ये फिल्म बॉक्स ऑफिस पर सफलता के नए झंडे गाड़ेगी और रिकॉर्ड तोड़ कमाई करेगी. फिल्म जगत के जानकार बता रहे हैं कि इस फिल्म का कारोबार पहले ही दिन 30-35 करोड़ तक होने की उम्मीद है और तीन से चार दिनों में ही ट्यूबलाइट आसानी से सौ करोड़ क्लब में पहुंच सकती है.

प्रवीण कुमार

बॉलीवुड के सुल्तान सलमान खान उन अभिनेताओं में से एक हैं, जो बॉक्स ऑफिस पर तो राज करते ही हैं, दूसरों का करियर बनाने में भी मदद करते हैं. इस लिस्ट में कैटरीना कैफ, सोनम कपूर, सोनाक्षी सिन्हा, ऐश्वर्या राय बच्चन, स्नेहा उल्लाल, डेज़ी शाह, ज़रीन खान, सना खान, अथिया शेट्टी, सूरज पंचोली, हेजल कीच, भूमिका चावला जैसे कई नाम शामिल हैं. वैसे सलमान खान का नाम कई अभिनेत्रियों साथ भी जुड़ चुका है. ख़ासतौर पर एश्वर्या राय और कैटरीना कैफ के साथ. इसके अलावा पुराने समय की बात की जाए, तो संगीता बिजलानी और सोमी अली के साथ भी सलमान के संबंधों की चर्चा थी. एक तरफ जहां सलमान के साथ काम कर चुकी कई अभिनेत्रियों का करियर आज के दौर में ख़त्म हो चुका हैं. वहीं दूसरी ओर, सलमान 51 साल की उम्र में भी अपने से आधे उम्र की अभिनेत्रियों के साथ काम कर रहे हैं.

सलमान खान ने कबीर खान के निर्देशन में तैयार अपनी फिल्म ट्यूबलाइट के प्रमोशन में कोई कमी नहीं छोड़ी. फिल्म ट्यूबलाइट ईद के मौके पर 25 जून को सिनेमाघरों में बिना किसी कंट्रोवर्सी के रिलीज हुई. सलमान के अलावा फिल्म में सोहेल खान, ओमपुरी और चाइना की अभिनेत्री जू जू नजर आएंगे. वहीं शाहरुख खान भी फिल्म में एक छोटे लेकिन बेहद अहम रोल में नज़र आएंगे. इन दोनों सुपर स्टार्स के फैंस इन्हें एकसाथ खूब पसंद करेंगे. ट्यूबलाइट दो भाइयों की कहानी है. ये फिल्म 1962 के भारत-चीन युद्ध के बैकग्राउंड पर बेस्ड है. सलमान फिल्म में एक भारतीय व्यक्ति की भूमिका में हैं, जिसे चीन की एक लड़की से प्यार हो जाता है. इसमें कोई शक नहीं कि सलमान खान की ये फिल्म बॉक्स ऑफिस पर सफलता के नए झंडे गाड़ेगी और रिकॉर्ड तोड़ कमाई करेगी. फिल्म जगत के जानकार बता रहे हैं कि इस फिल्म का कारोबार पहले ही दिन 30-35 करोड़ तक हो सकता है और तीन से चार दिनों में ही ट्यूबलाइट आसानी से सौ करोड़ क्लब में पहुंच सकती है. इसके अलावा सलमान की पिछली फिल्में बजरंगी भाईजान और सुल्तान ने जिस तरह से बॉक्स ऑफिस पर 300 करोड़ का कारोबार किया था, उसे देखते हुए उम्मीद की जा सकती है कि ट्यूबलाइट भी इस तीन सौ करोड़ी क्लब का हिस्सा बनेगी.

वैसे भी सलमान खान का लक फिल्म *वांटेड* से चल निकला है. *वांटेड* में सलमान का जो अभिनय दर्शकों को देखने को मिला, वो वाकई काबिल-ए-तारीफ था. *वांटेड* के बाद सलमान की दो फिल्में आईं, लेकिन वो कुछ ख़ास नहीं रहीं. इसके बाद आई *दबंग* ने बॉक्स ऑफिस पर ऐसा दम दिखाया कि सबके होश उड़ गए. दबंग से शुरू हुआ सफलता का बेजोड़ सफर अब तक जारी है. उनकी लगातार 10 फिल्मों ने बॉक्स ऑफिस पर सौ करोड़ से ज्यादा का कारोबार किया. हालांकि इनमें *जय हो* थोड़ी कमजोर रही, लेकिन सलमान खान की फैंन फॉलोइंग इतनी ज्यादा है कि फिल्म *जय हो* ने भी बॉक्स आफिस पर सौ करोड़ का आंकड़ा पार कर ही लिया.

सलमान खान ने वैसे तो अपना करियर साल 1988 में आई फिल्म *बीवी हो तो ऐसी* से शुरू किया था. घरेलू फिल्म होते हुए भी ये फिल्म शानदार थी. इसमें रेखा का अभिनय भी दमदार था, लेकिन फिल्म फ्लॉप रही और सलमान को भी इससे कोई ख़ास फायदा नहीं हुआ. सूरज बड़जात्या निर्देशित *मैंने प्यार किया* मुख्य अभिनेता के तौर पर सलमान की पहली फिल्म थी. ये फिल्म ऑल टाइम ब्लॉकबस्टर रही. इस फिल्म के बाद सलमान खान ने एक के बाद एक हिट फिल्मों की लाइन लगा दी.

सूरज बड़जात्या के साथ सलमान ने आगे चलकर *हम आपके हैं कौन*, *हम साथ-साथ हैं* और *प्रेम रत्न धन पायों* जैसी सुपरहिट फिल्में की. सलमान खान देखते ही देखते बॉक्स ऑफिस के असली किंग बनते चले गए और हिट फिल्मों की झड़ी लाग दी. लेकिन कहते हैं न कि समय कभी भी किसी के लिए एक सा नहीं रहता. वही सलमान के साथ भी हुआ था. एक समय ऐसा भी आया था जब माना जा रहा था कि सलमान का करियर लगभग ख़त्म ही हो जाएगा. लेकिन समय ने फिर से करवट बदली और इस बार सलमान खान की ऐसी चांदी हुई कि आज के समय में बॉक्स ऑफिस पर कोई भी अभिनेता उनसे टक्कर नहीं ले सकता. आज के समय में उनकी फिल्में बॉक्स ऑफिस पर रिकार्ड तोड़ कमाई कर ब्लॉकबस्टर साबित होती हैं. ■

feedback@chauthiduniya.com

जब फेक फॉलोवर्स पर भड़के सलमान

सलमान खान ने कुछ दिन पहले एक फेक फॉलोवर को ट्वीटर पर आड़े हाथ लेते हुए जमकर कोसा. सलमान ने उसे फटकारते हुए कहा कि उन्हें ऐसे फैंस नहीं चाहिए, जिन्हें सही तरीके से बात करना नहीं आता हो. इसी बहाने सलमान ने सोशल साइट्स पर भद्दी और अश्लील भाषा का प्रयोग करने वालों को भी खरी-खोटी सुनाई और ट्रोल करने वालों पर जमकर गुस्सा उतारा. सलमान ने कहा है कि फेक आईडी बनाकर गालियां देने वाले फैंस भाड़ में जाएं. सलमान ने ऐसे लोगों के बातचीत के लहजे को लेकर भी गुस्सा उतारा. उन्होंने कहा, क्या इनके

मां-बाप इन्हें यही सिखाते हैं. अपनी फिल्म *ट्यूबलाइट* के प्रमोशनल इंटरव्यू के दौरान सलमान खान ने कहा, *अगर ट्वीटर के जरिए किसी को कुछ कहना है, तो वो अपनी असली आईडी बनाकर कहे. फेंक आईडी बनाकर गालियां देने वालों को मैं अपना फैन नहीं मानता.*

सलमान आगे कहते हैं, ट्रोल करने वालों को मैं यही कहूंगा कि अगर उनको कुछ भी कहना है या कमेंट करना है, तो वे अपने असली नाम के साथ आईडी बनाएं और कमेंट करें. पहले जब भी मैं कोई ट्वीट करता था, तो उसका रिस्पॉन्स देखता था. लेकिन जब मैंने देखा कि कुछ लोग सोशल साइट पर भद्दी भाषा का प्रयोग करने लगे, तो मैंने ट्वीटर देखना ही बंद कर दिया. अगर मुझे फॉलो करने वाले कम होते हैं, तब भी मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता. जो मेरे असली फैन हैं, वे अपनी रियल आईडी से सामने आते हैं. जब नकली आईडी बना कर ये लोग गंदी भाषा में लिखते है, तो लगता है इनके माता-पिता ने क्या इन्हें यही सिखाया है. ■

सलमान खान की अब तक की वे हिट फिल्में जिन्होंने बॉक्स ऑफिस पर रिकॉर्डतोड़ कमाई करके सलमान खान को सुपरस्टार बनाया.

फिल्म	कमाई	निर्णय
मैंने प्यार किया (1989)	15 करोड़	ऑलटाइम ब्लॉकबस्टर
बाग़ी (1990)	04 करोड़	हिट
सनम बेवफ़ा (1991)	5.75 करोड़	सुपरहिट
पत्थर के फूल (1991)	6.5 करोड़	हिट
साजन (1991)	10 करोड़	सुपरहिट
हम आपके है कौन (1994)	70 करोड़	ऑलटाइम ब्लॉकबस्टर
करण-अर्जुन (1995)	32.15 करोड़	ब्लॉकबस्टर
जीत (1996)	17.25 करोड़	हिट
जुड़वा (1997)	15 करोड़	हिट
प्यार किया तो डरना क्या (1998)	16.25 करोड़	हिट
कुछ कुछ होता है (1998)	45.25 करोड़	ऑलटाइम ब्लॉकबस्टर
बीवी नं.1 (1999)	24 करोड़	हिट
हम दिल दे चुके सनम (1999)	21 करोड़	हिट
हम साथ साथ हैं (1999)	28 करोड़	हिट
मुझसे शादी करोगी (2004)	30 करोड़	हिट
मैंने प्यार क्यों किया (2005)	27 करोड़	हिट
नो एंट्री (2005)	43 करोड़	सुपरहिट
पार्टनर (2007)	61.15 करोड़	ब्लॉकबस्टर
वांटेड (2009)	61.25 करोड़	सुपरहिट
दबंग (2010)	141 करोड़	ऑलटाइम ब्लॉकबस्टर
रेडी (2011)	120 करोड़	ब्लॉकबस्टर
बॉडीगार्ड (2011)	145 करोड़	ब्लॉकबस्टर
एक था टाइगर (2012)	198 करोड़	ब्लॉकबस्टर
दबंग-2 (2012)	154 करोड़	ब्लॉकबस्टर
जय हो (2014)	112 करोड़	हिट
किक (2014)	233 करोड़	ब्लॉकबस्टर
बजरंगी भाईजान (2015)	321 करोड़	ऑलटाइम ब्लॉकबस्टर
प्रेम रतन धन पायो (2015)	213 करोड़	सुपरहिट
सुल्तान (2016)	301 करोड़	ऑलटाइम ब्लॉकबस्टर